मुनिश्रीपद्मविजयजी द्वारा अनुवादित एवं लिखित अपूर्व धार्मिकसाहित्य

१– ललित-भक्तिदर्पण
२– ऐतिहासिक तीर्थ : हस्तिनापुर
३– ज्ञानसार अष्टक (हिन्दी-अनुवाद)
४– प्रशमरति (हिन्दी-अनुवाद)
५– उपदेशमाला (हिन्दी-अनुवाद)
६– पर्वकथासंग्रह (हिन्दी-अनुवाद)
७– योगशास्त्र (हिन्दी-अनुवाद)

प्रकाशन की प्रतीक्षा में

* अध्यात्मसार (हिन्दी अनुवादसहित)
* षड्दर्शनसमुच्चय (हिन्दी अनुवादसहित)

प्राप्ति-स्थान

१– श्री निर्ग्रन्थ साहित्य प्रकाशन संघ
१८४४ प्रताप मार्केट, सदर बाजार,
दिल्ली–६

२– श्री मेहता कस्तूरचन्द अमीचन्द
३६ लाम बिल्डिंग, एन. टी. ब्रिज
मझगांव–बम्बई-१०

३– सोमचन्द डी. शाह
जीवन निवास के सामने,
पो०–पालीताणा (सौराष्ट्र)

४– पं० भूरालाल शाह
सरस्वती पुस्तक भंडार
रतनपोल, हाथीखाना,
पो०– अहमदाबाद–१ (गुजरात)
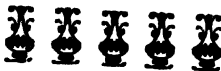
अब तक धरती पर अनन्त तीर्थंकर हो गए, अनन्त चक्रवर्ती और अनन्त वासुदेव बलदेव हो गए, पर इतिहास के पृष्ठों पर उनका आज कोई अता पता नहीं है। वर्तमान चौबीस तीर्थंकरों का भी तो कहाँ वर्तमान इतिहास उल्लेख कर पा रहा है? महाकाल की करवट के नीचे बड़े-बड़े महापुरुष दब गए हैं, अतीत की तहों के भीतर समा गए हैं। बहुतों के स्पष्ट तो क्या, धूमिल चित्र भी नहीं मिल पा रहे हैं।

व्यक्ति नहीं, गुण :

अतएव हमारे आचार्यों ने काल के इस अजस्र-प्रवाह से व्यक्ति को नहीं, गुण को उभारा है। व्यक्ति मिट जाता है, पर उसका व्यक्तित्व अमर रहता है। अतएव भारतीय आचार्य व्यक्ति-पूजा से गुण-पूजा की ओर प्रवृत्त हुए हैं।

उन्होंने कहा है—आत्मा का निर्मल और निर्विकार स्वरूप ही शाश्वत है, अजर-अमर है। उसका जो ज्ञानमय-चिन्मय रूप है, ज्ञान का जो अखण्ड दीप है, वह महाकाल के झंझावातों से भी बुझ नहीं सकता। अनन्त काल पूर्व होने वाले तीर्थंकरों का जो यह आभ्यन्तर रूप था, वही वर्तमान चौबीसी के तीर्थंकरों का था, और वही आभ्यन्तर रूप अनागत में होने वाले समस्त अनन्त तीर्थंकरों का होगा। उनके खानदान, वंश, जाति, नाम-धाम, शरीर के रंगरूप और चिह्न भिन्न-भिन्न प्रकार के हो सकते हैं, किंतु उनकी आत्मा का रूप एक ही प्रकार का होता है। उनके आन्तरिक रूप में कोई अन्तर नहीं पड़ता। अतएव आचार्यों ने जो स्तुतियाँ, प्रार्थनाएँ की हैं, वे व्यक्ति की नहीं अपितु गुणों की हैं। व्यक्ति विशेष के नाम-रूप पर वे मुग्ध नहीं हुए हैं, अपितु उसकी आभ्यन्तर-आत्मा के अनन्त सौन्दर्य पर निछावर हुए हैं।

व्यक्ति के नाम का मूल्य, कुछ है तो, बस वह कुछ समय के लिए हो सकता है, इतिहास के लंबे पन्नों पर उसका कुछ भी मूल्य नहीं रह पाता।

उपर्युक्त श्लोकों में जो स्तुति की गई है वह किसी तीर्थंकर-विशेष के नाम पर नहीं की गई है, अपितु उनके सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक उज्ज्वल, उदात्त आभ्यन्तर रूप की की गई है।

चलते फिरते कल्पतरु :

स्तुति केवल वाग्-विलास नहीं होती, उसमें सिर्फ शब्दों का जोड़तोड़ या अलंकारों का चमत्कार मात्र ही नहीं होता, उसमें आत्मा का उदात्त स्वर गुंथा रहता है। उसमें हृदय का जोड़तोड़ एवं भावों का चमत्कार भरा रहता है। आत्मा की अतल गहराई मे उठने वाली श्रद्धा एवं भक्ति की लहरों में भाव-विभोर भक्त हृदय कहता है—**"जयति जङ्गम कल्प महो रुहो'**—प्रभु! आप जगम कल्प वृक्ष हैं। जंगम यानी चलते-फिरते। स्थावर जड़ क ल्पवृक्ष मनुष्य की भौतिक आशाएँ भले ही पूरी कर दें, पर वे एक ही जगह खड़े रहते हैं, इधर-उधर नहीं आ-जा सकते। किन्तु धरती पर के महामानव तो इस भूतल पर चलते-फिरते कल्पवृक्ष हैं। कल्प- यानी इच्छाएँ, उनको पूर्ण करने वाले हैं। संसार के प्राणियों की आशाएँ, कामनाएँ प्रभु की स्तुति और सेवा से पूर्ण होती हैं। जिसका तन-मन भगवान् के चरणों मे लीन हो गया, उनके गुणों में तन्मय हो गया, उसे ससार का महानतम वैभव प्राप्त हो गया। उसकी सब कामनाएँ-इच्छाएँ-अभिलाषाएँ पूर्ण हो गईं।

दुःख-सागर के तारक :

संसार दुःखों का समुद्र है। इसमें संघर्ष, कलह, कष्ट एवं परस्पर के विग्रह का अपार खारा जल भरा रहता है, आसक्ति एवं लालसाओं की उद्दाम तरंगें उछलती रहती हैं। आत्मा इस अतल गहराई में डूबी रहती है। दुःख और पीड़ाओं के थपेड़ खाती रहती है। कष्टों के तूफानों से टकराती रहती है, पर कहीं किनारा दिखाई नहीं देता। जिस ओर जाए उधर ही दुःखों की अपार जलराशि लहराती दिखाई देती है। उसे कोई सहारा नहीं, कोई किनारा नहीं। उस दुःखी संत्रस्त आत्मा को दुःखों के इस महासागर से तारने वाला यदि कोई है, तो हे प्रभु, आप ही हैं। आपके प्रवचन, आपके उपदेश ही तो उस विराट् जलपोत के समान हैं, जो ससार-सागर में डूबते हुए प्राणियों को पार लगा सकते हैं।

कभी न बुझने वाला दीप :

और वह कभी नहीं बुझने वाला सनातन दीप कौन है? हे प्रभु,

आप ही तो हैं। आपने अपने अंतर् में जो ज्ञान का महादीपक जलाया है, वह संसारी हवाओं के तूफानी झोंकों से कभी बुझ नहीं सकता, रात-दिन का अनन्त काल चक्र उसके प्रकाश एवं प्रभामंडल को क्षीण नहीं कर सकता। वह एकरस निरंतर जलता रहता है, अखण्ड रूप में प्रकाश फैलाता रहता है। और जो उसके प्रकाश से प्रकाशित हो गया, स्वयं को पहचान लिया, उस मुमुक्षु आत्मा का भी अन्तर् दीपक जल उठा। इस प्रकार आपके इस सनातन ज्ञान दीपक से हजारों-लाखों ही दीप जल उठते हैं। सब ओर प्रकाश ही प्रकाश फैल जाता है।

धरती पर के चाँद :

आकाश में जो यह चाँद के रूप में एक प्रकाश का टुकड़ा दिखाई देता है, वह तो क्या है आपके सामने प्रभो ? वह कभी क्षीण होता है, कभी बढ़ता है। उसकी कलाएँ भी घटती-बढ़ती रहती हैं। अमावस्या की काली रात में तो आकाश मण्डल में उसका कहीं कोई चिह्न ही नहीं दिखाई देता। दिन के समय में वह ढाक का सूखा पत्ता जैसा हो जाता है। उसकी ज्योत्स्ना और शीतलता भी सिर्फ रात भर रहकर प्रातः होते ही धरती से अपनी चादर समेट कर विदा हो जाती है। ग्रहण के समय तो वह काला कपाल हो जाता है। अतः इस धरती के सच्चे चाँद तो आप हैं ! आपके ज्ञान की ज्योत्स्ना कितनी शुभ्र और निर्मल है ! कभी क्षीण नहीं होती ! वह दीप एक-बार प्रदीप्त हो गया तो अनन्त-अनन्त काल तक संसार को ज्योतित करता रहता है। रात में भी और दिन में भी ! न उसको राहु ग्रस सकता है, न सूर्य उसके प्रभापुंज को क्षीण कर सकता है। शीतलता भी कितनी विचित्र है ! भव ताप से, दुःखों व संघर्षों की अग्नि से संतप्त व्यक्ति को जब आपके ज्ञान-चन्द्र की शीतल किरणों का जीवन में अन्तःस्पर्श होता है तो वह सब ताप-संताप भूल कर आह्लादित हो उठता है।

एक अद्भुत कमल :

प्रभु-स्तुति में इस प्रकार भाव-विभोर होकर प्रार्थना करता हुआ भक्त अन्त में कहता है—**"विषय पङ्किल मोह जलोल्लसद्"**— यह संसार एक ऐसी झील है जिसमें विषय-कषाय का कीचड़ भरा

है। मोह का जल ठाठें मार रहा है। राग-द्वेष की तरंगें उछल रही हैं।

राग-द्वेष की तरंगें बड़ी भयानक हैं। स्वजन, स्वधन, और स्वतन के राग का महान् भंवर है, समुद्र में उठने वाला जल का चक्र है, जो बड़े-बड़े जहाजों को भी डुबा देता है।

स्वजन-की सीमाओं में विराट् आत्मा बंध जाती है। यह विकल्प उठ खड़ा होता है कि यह मेरा है, मेरे जाति या वंश का है, मेरी परम्परा और मेरे संप्रदाय का है। यह स्व-पर की कल्पना, ऊपर से बड़ी मधुर लगती है, पर, वास्तव में है बहुत ही कटु। जितने भी दुःख हैं, संघर्ष हैं, सब पर को स्व मानने से उत्पन्न होते हैं। और स्व-पर का भेद करने के कारण चेतन चेतन के बीच में भी जब द्वैत बुद्धि जन्म लेती है, अपना-पराया का भेद उठता है, तो दुःख की परम्परा का वह सूत्रपात हो जाता है, जिसकी समाप्ति सहज नहीं रहती।

स्व-धन की भावना भी कम भयानक नहीं है। धन का मोह मनुष्य को पागल बना देता है। उसकी आँखें बन्द हो जाती हैं। आत्मा में ममत्व का दावानल जल उठता है। 'मेरा धन, मेरी संपत्ति' का कोलाहल अन्तर्मन को उद्वेलित कर देता है। व्यक्ति धन पर साँप की तरह फन फैलाकर बैठ जाता है। कोई उसे हाथ लगाए, उसकी तरफ नजर भी उठाले तो वह उसे ही काटने दौड़ता है, फुंकार मारता है। धन का लोभी मानव यह नहीं समझता है कि धन से सुख नहीं प्राप्त होता। उससे तो देर-सबेर दुःखों, पीड़ाओं और यातनाओं की ज्वालाएं ही उठेंगी। उसी ज्वाला में आत्मा जलती रहती है।

तीसरा भँवर-जाल है स्व-तन का। स्व-तन का व्यामोह मनुष्य को इतना भटकाता है कि कुछ पूछिए ही नहीं। अपने तन की सुख-सुविधाओं के लिए वह दिन-रात दौड़-धूप करता है, संघर्ष करता है। दूसरों के सुखों को लूट कर भी अपने तन का सुख प्राप्त करना चाहता है। अपने तन को मूल्यवान समझता है, फूलों-सा कोमल समझता है। इसके सामने दूसरे हजारों-लाखों तन की कोई कीमत ही नहीं समझता। उन्हें तो लोहे और पत्थर के बने समझता है कि

उन्हें क्या पीड़ा होती है ? जो भी पीड़ा होती है, मुझे ही होती है। स्व-तन का यह व्यामोह के अनर्गल संघर्ष और द्वन्द्वों की जड़ है। अनादि काल से यह संसार स्व-जन, स्व-धन और स्व-जन के इन्हीं आघातों से त्रस्त होता आ रहा है।

इस संसार रूपी सीमाहीन झील में प्रभु को एक कमल, अद्भुत कमल के रूप में देखते हुए स्तुति के अन्त में कहा है—"**कमल मेक-महो जिन पुङ्गवः**"—हे प्रभु, आप अपने ढंग के एक ही कमल है।

कमल कीचड़ में जन्म लेता है। कीचड़ में कीड़ कुलबुलाते रहते हैं, मच्छर और मक्खी मँडराते रहते हैं। कीचड़ का रंग काला होता है, दाग लग जाता है तो कपड़े गन्दे हो जाते हैं। सड़ता है, तो बदबू देता है, इस प्रकार जो कीचड़ संसार में मृत्यु और गंदगी बाँटता रहता है, उसी में कमल पैदा होता है। पर वह कमल कितना विचित्र होता है ! न उसमें कीचड़ की गन्दगी, न बदबू ! कितना मोहक, नयनाभिराम रूप होता है, कितनी मधुर सुगन्ध होती है उसमें और कितना पवित्र होता है वह ! निर्लिप्त वीतराग आत्माएँ भी संसार रूपी झील में ऐसे ही निर्लिप्त कमल हैं।

आत्मा की दृष्टि से तीर्थंकर की आत्मा और हमारी आत्मा में कोई अन्तर नहीं होता। चैतन्य की दृष्टि से दोनों समान हैं। पर, वह कीचड़ में जन्म लेकर कमल की तरह निर्मल पवित्र और सद्-गुणों के सौरभ से महकता रहता है। दया, करुणा, सद्भाव, निष्कामता की सुगन्ध संसार को अर्पण करता रहता है। उसी कमल का आदर्श सामने रखकर हमारी भावनाएँ उस ओर उन्मुख होती हैं। श्रद्धा और भक्ति का सम्बल लेकर उस आदर्श की ओर बढ़ने के लिए प्रार्थनाएँ हुआ करती हैं। इस प्रार्थना से आत्मा के सामने अपना जीवन-लक्ष्य स्पष्ट हो जाता है। साथ ही उस ओर बढ़ने का अजेय बल भी प्राप्त होता है।

"न लिप्पई भवमज्झे वि संतो,
जलेण वा पोक्खरणी-पलासं।"

—भगवान् महावीर

संसार में रहते हुए भी वीतराग आत्माएँ जल में कमल के समान निर्लिप्त होती हैं।

★

★ उपाध्याय अमरमुनि

साधना की तेजस्विता

साधक की साधना क्या है ? साधना अपने अंतर्हृदय में सुप्त ज्ञान-ज्योति को प्रदीप्त करना है। आत्मा के तैजस को प्रज्वलित करना है। साधक अपने अंतर् के तेज को जागृत करके ही अपनी साधना को सफल बनाता है।

और आत्मा का तेज क्या है ? लीजिए, प्रस्तुत है इस संदर्भ में श्रद्धेय कविश्रीजी का स्पष्ट विचार-चिंतन। —संपादक

जीवन का अर्थ क्या है ? जीवन की साधना क्या है ? क्या पचास-साठ-सौ वर्ष जी लेना मात्र जीवन है ? जीवन का मूल्यांकन क्या इसी आधार पर होता है कि कितना लम्बा, दीर्घ जीवन गुजरा है, या गुजरने वाला है ? नहीं ! जीवन का अर्थ जीना मात्र नहीं है। हजार वर्ष जीकर भी जीवन का कोई मूल्य नहीं स्थापित हो सकता, और एक दिन एवं एक घड़ी के जीवन से भी जीवन की सम्पूर्ण श्रेष्ठता और पूर्ण मूल्य प्राप्त किया जा सकता है। जीवन का अर्थ यह है कि वह किस तरीके से जीया जा रहा है ? उसमें तेजस्विता और प्रभावशीलता कितनी है ? जीवन एक साधना है। इस साधना के द्वारा जो अपने आप को परखता है, अपने अन्तरात्मा को पाता है। अपने को आगे बढ़ाता है अन्तर्मलों को धोकर शुद्ध और निर्मल बनाता है। दूसरों के लिए स्वयं समर्पित हो जाता है। इसी में उसके जीवन का महत्त्व छिपा है। इसी आधार पर उसका मूल्यांकन किया जाता है। साधना का मूल्य कभी भी समय और संख्या के आधार पर नहीं आँका जाता। साधना में संख्या और समय की परिकल्पना एक भुलावा है। इस प्रकार के गणित के ढंग

का लेखा-जोखा तो व्यापार में चल सकता है, साधना में नहीं। यह सब तो भूल भुलैय्या है, जिसमें साधक भटक जाता है।

साधना में तेजस्विता चाहिए :

साधना आज भी चल रही है, किन्तु उसमें कर्म काण्ड, विधि-विधान, और लेखा-जोखा बहुत चलता है। सामायिक आज भी होती है, सैकड़ों-हजारों ही होती हैं। चातुर्मास में जब साधना की गिनती होती है, तपस्या और सामायिक की गणना होती है, तो पता चलता है कि इतने सौ अठाइयाँ हो गई, इतने बड़े तप हुए, इतने आयम्बिल हुए, इतनी दया हुई और इतनी हजार सामायिक हुई। जन-गणना की तरह एक लम्बी-चौड़ी सूची सामने आ जाती है. रजिस्टर में दर्ज हो जाती है और बही-खाते में चढ़ जाती है। और फिर अखबारों में लम्बी-चौड़ी सुर्खियों में प्रचारित भी हो जाती है। यह बही-खाता चलता चला जाता है, रकमें जमा होती रहती हैं, हजारों-लाखों की कलमें लिख दी जाती हैं. पर अन्दर में झाँककर देखो तो कुछ भी नहीं मिलता। यह तो उस व्यापारी की तरह हुआ, जो कर्ज में इधर-उधर धन लुटाता चला जाता है, उसे बही-खाते में लिखता जाता है, पर उसको वसूल करने की कोई फिकर नहीं करता, कोई व्यवस्था और प्रबन्ध नहीं कर पाता। जब खाता देखता है, तो धन बहुत लिखा मिलता है, पर धन को देखना चाहता है तो कुछ भी पता नहीं चलता। खाते में धन है, पर तिजोरी खाली है। उसके लिए राजस्थान में एक कहावत है—**"खाता देखां धन धणो, धन देखां धन नांय"** खाते को देखते हैं तो धन बहुत मालूम पड़ता है, पर जब धन को देखने जाते हैं तो बस जय-जय गोपाल है।

इसी व्यापारी और साहूकार की स्थिति की तरह की स्थिति ही अधिकतर आज हमारे साधकों की हो रही है। किसी ने जीवन में हजार सामायिक की हैं, किसी ने दस हजार और किसी ने लाख पर भी नम्बर लगा दिया। पर उनके जीवन में गहराई से देखो तो साधना का धन कितना मिलेगा ? वे ठीक वैसे ही दरिद्र और भिखारी मिलेंगे, जैसे कि एक भी सामायिक नहीं करने वाला है। साधना की दृष्टि से उनके खाते में धन जमा है, पर जीवन में देखें तो कुछ भी नहीं है। मैं

कहता हूँ, और मैं ही क्या, भगवान् महावीर तक ने कहा है कि तुम्हारी हजारों-लाखों सामायिक से भी एक सामायिक अच्छी है, यदि उसमें समभाव की जागृति हो गई हो तो ! एक सच्ची सामायिक के मूल्य में सम्राट् श्रेणिक का समूचा साम्राज्य तुच्छ और नगण्य सिद्ध हुआ। सुना है आपने, जब श्रेणिक ने पूणिया श्रावक की सामायिक खरीदने के लिए प्रयत्न किया था, उसके पास जाकर श्रेणिक ने कहा था—"श्रावक मुझे तुम्हारी एक सामायिक चाहिए ! सिर्फ एक सामायिक !! भगवान् महावीर ने बतलाया है कि तुम्हारी एक सामायिक से मेरी नरक-यात्रा टल सकती है। बोलो ! तुम्हें क्या मूल्य चाहिए ? जो माँगोगे वही दूँगा, सिर्फ एक सामायिक दे दो !"

पूणिया श्रावक सम्राट् की बात सुनकर चकित हो गया। उसने सोचकर कहा—"महाराज ! जिसने सामायिक खरीदने की बात कही है वही उसका मूल्य भी बता सकता है। जो मूल्य होगा वह आप पूछ आइए, मैं सामायिक दे दूँगा। वैसे मैंने यह धन्धा कभी किया नहीं है।"

सम्राट् हर्ष से उछलता हुआ प्रभु के चरणों में पहुँचता है और कहता है—"भन्ते ! पूणिया श्रावक सामायिक देने को तैयार हो गया है, कृपया बतलाइए कि एक सामायिक का मूल्य क्या होना चाहिए ? जो मूल्य होगा, वही मैं देने को तैयार हूँ।"

भगवान् महावीर ने देखा कि श्रेणिक भौतिक वैभव के बल पर आध्यात्मिक वैभव को खरीदने की बात सोच रहा है। धीर-गम्भीर वाणी में भगवान् बोले—"राजन् ! भौतिक वैभव के साथ सामायिक की क्या तुलना हो सकती है ? यदि भूतल से चन्द्रलोक तक स्वर्ण, मणि-मुक्ताओं का अम्बार लगा दिया जाए तब भी एक सामायिक का मूल्य तो क्या, सामायिक की दलाली का मूल्य भी पूरा नहीं हो सकता।"

श्रेणिक भगवान् की वाणी सुनकर दिग्मूढ़-सा हो गया। उसकी आशाओं पर सौ घड़े पानी गिर पड़ा। भगवान् ने उसको आध्यात्मिक समाधान देते हुए बतलाया—"मृत्यु के द्वार पर पहुँचे हुए किसी प्राणी को हजार, लाख या कोटि मुद्रा देकर भी क्या बचाया जा सकता है ?"

—"नहीं, भगवन् ! असम्भव है यह !"

—"तो, राजन् ! समझो, जीवन का मूल्य क्या है, कितना है ? कोटि-कोटि स्वर्ण मुद्रा या मणि-मुक्ताओं से जब एक जीव भी नहीं बचाया जा सकता, जीवन का एक क्षण भी प्राप्त नहीं किया जा सकता, तो सामायिक की साधना, जो एक मुहूर्त्त भर के लिए अनन्त-अनन्त जीवों को अभय देती है, समत्व की अर्जना करती है उसका मोल क्या होगा ? वह तो मोल से परे अनमोल है !"

सम्राट् का समाधान हो गया, और मैं उस पर से आज का समाधान कर रहा हूँ !

अभिप्राय यह है कि सामायिक यदि सच्ची सामायिक होती है, पूणिया श्रावक जैसी सामायिक होती है, तो एक ही सामायिक जीवन का अमूल्य धन हो जाती है। वह एक ही सामायिक जीवन में अद्भुत परिवर्तन कर डालती है। जन्म-जन्मान्तरों के बन्धनों की बेड़ियाँ चकनाचूर हो जाती हैं। और यदि सामायिक में आध्यात्मिक साधना का, समभाव का यह तेज नहीं प्रकट होता है, तो लाखों-करोड़ों सामायिक का भी क्या मूल्य है ?

आज का साधक साधना के क्षेत्र में बहुत दीर्घकालीन कर्मकाण्ड को लिए हुए चल रहा है। देह-दण्ड का बहुत ऊँचा झण्डा लिए वह बाहर में बहुत दूर तक बढ़ता जा रहा है। पर अन्दर में कहाँ है उसकी साधना में शक्ति ? कहाँ है तेजस्विता और आत्म-दर्शन ? अभी तक उसमें जागृति नहीं आई है, बल पैदा नहीं हुआ है। और जिसे हम साधना का 'रस' कहते हैं, आनन्द कहते हैं वह भी तो वहाँ उत्पन्न नहीं हुआ है ! साधना के क्षणों में जब रस और आनन्द की अनुभूति नहीं होती है तो वह साधना नीरस हो जाती है। वह कर्म-काण्ड कितना ही बड़ा क्यों न हो, एक भार बनकर रह जाता है। मजदूर यदि सोना ढोता है, मणि-मुक्ता ढोता है तो उसका लाभ उसे नहीं मिलता, उसे मिलती है मजदूरी ! सिर्फ दो-चार आने ! उसी प्रकार बिना आध्यात्मिक आनन्द की जागृति हुए यदि कर्मकाण्ड किया जाता है, तो उसका वास्तविक मूल्य प्राप्त नहीं हो सकता, साधना का सच्चा लाभ उसे नहीं मिल सकता।

गुप्त अग्नि बनाम प्रज्वलित अग्नि :

प्राचीन आचार्य इस सत्य को पहचान चुके थे। उन्होंने जीवन के प्रत्येक कर्म को आनन्दमय और तेजस्वी बनाने की प्रेरणा दी है। उसे शक्ति-सम्पन्न बनाने का उपदेश किया है। गुरु जब शिष्य को अध्ययन कराते हैं, और शिष्य विनय पूर्वक, श्रद्धायुक्त होकर गुरु-चरणों में बैठ कर शिक्षा ग्रहण करता है, तो सर्वप्रथम गुरु-शिष्य एक सहमन्त्र का उच्चारण करते हैं—"**ॐ तेजस्विनावधीतमस्तु।**"

हमारा यह अध्ययन तेजस्वी बने, प्रकाशमान बने। प्रकाश की वे दिव्य किरणें निकलें, जो गुरु के अन्तस्तल में भी प्रकाश फेंकती रहें और शिष्य के जीवन के कोने-कोने को भी जगमगा दें। और वह प्रकाशकिरण लिए जिधर भी निकले—परिवार में, समाज में और राष्ट्र में—उधर बस, प्रकाश ही प्रकाश फैल जाये। अन्धकार भयभीत होकर भाग जाये। आकाशमण्डल में सूर्य जिधर भी घूमता है उधर ही अन्धकार को छिन्न-भिन्न करता हुआ, प्रकाश ही प्रकाश बिखेरता चला जाता है। इसी प्रकार हमारा अध्ययन अज्ञान-तिमिर का नाश करता हुआ वैयक्तिक जीवन को, समाज और राष्ट्र के जीवन को जगमगादे, चारों ओर प्रकाश फैलादे। अपनी तेजस्विता से अज्ञान को परास्त कर डाले।

कितनी उच्च आकांक्षा और महान् संकल्प है अध्ययन के लिए। जीवन में अध्ययन तो चलता ही रहता है, शास्त्रों का स्वाध्याय भी होता है। पर इसे स्वाध्याय नहीं, केवल पारायण या पाठ कहना चाहिए। वास्तव में हम जो अध्ययन कर रहे हैं, वह स्वाध्याय की कोटि में नहीं आता, पारायण या पाठ तक ही सीमित रहता है। अक्षरों का अध्ययन तो हम कर लेते हैं, उनका स्पष्ट उच्चारण भी कर लेते हैं, पर अक्षरों के भीतर छिपी आत्मा को हम नहीं पहचान पाते। उन अक्षरों के माध्यम से जिस तेज और प्रकाश की अभि-व्यक्ति होनी चाहिए, वह नहीं हो सकती। फलस्वरूप हमारा अध्य-यन सिर्फ अक्षर-पाठ तक ही सीमित रह जाता है। अक्षरों में शक्ति छिपी रहती है। उस शक्ति को जब तक जागृत नहीं किया जाता, उसके दर्शन नहीं किये जाते, तब तक अध्ययन में निखार नहीं आता, अध्ययन तेजस्वी और प्रकाशमान नहीं बन पाता। अक्षरों

की देह को पकड़ कर ही हम बैठे रहते हैं, उनकी सुप्त आत्मा को जगाने का प्रयत्न नहीं करते। और जब तक अक्षरों की आत्मा नहीं जगती, प्रकाश मिल नहीं सकता।

दियासलाई, जिसे संस्कृत में 'दीपशलाका' कहते हैं, अपने भीतर अग्नि-तत्त्व छिपाए बैठी है। उसमें वह शक्ति है, जो विराट् रूप धारण कर समूचे विश्व को प्रज्वलित कर सकती है, भस्मसात् कर सकती है, और संसार के समस्त अन्धकार को मिटा कर प्रकाश-रश्मियाँ फैला सकती है। पर कहाँ है उसमें वह शक्ति? वह एक छोटी-सी शलाका के अग्र भाग पर केन्द्रित है, एक नन्हे से बिन्दु में बन्द है, जिसे आप हाथ में ले सकते हैं। बच्चा भी उससे खेल सकता है। मुँह में भी ली जा सकती है और जेब में भी रख ली जा सकती है। क्योंकि उसमें अग्नि तत्त्व सोया पड़ा है, जागृत नहीं है। जबतक घर्षण करके आग प्रज्वलित नहीं की जाती, वह महाशक्ति प्रकट नहीं होती, और तब तक उस दियासलाई का कोई मूल्य नहीं, कोई महत्त्व नहीं। किंतु यदि उसका महत्त्व समझना है, ज्योति का दर्शन करना है, तो जरा उसे रगड़ कर देखिए, एक ज्योति-रेखा प्रकट होती है, एक अग्नि ज्वाला प्रज्वलित होती है, और एक ऐसा तेज दीप्त होता है, जो पर्वतों की गहन कन्दराओं के हजारों-लाखों वर्षों के सघन अन्धकार को भी मिटा देता है, सब ओर प्रकाश ही प्रकाश फैला देता है। ईन्धन और घास के बड़े-बड़े ढेर को कुछ ही क्षणों में जलाकर राख कर डालता है। एक बार हम एक छोटे से गाँव में गए थे। देहात में तो अधिकतर कच्चे मकान, घास-फूस के छप्पर और चारों ओर काँटों की कंटीली बाड़—बस यही घरों का रूप होता है। दोपहर में देखा कि गाँव के एक किनारे पर आग की भयंकर लपटें उठ रही हैं। धुएँ से आच्छन्न हो रहा है। गाँव के लोग एकत्र होरहे हैं, चिल्ला रहे हैं, और आग की लपट हवा के साथ बढ़ती हुई झोंपड़ियों को भस्मसात् करती हुई फैलती चली जा रही है। बड़े प्रयत्न और संघर्ष के बाद वह आग बुझ पाई, किंतु उसने सैकड़ों पशुओं की बलि ले ली, पचासों घरों को राख की ढेरी बना दिया और सैकड़ों ही मनुष्यों को बेघरबार कर दिया। फिर पता चला कि किसी नादान बच्चे ने जलती हुई दियासलाई की तीली एक घास के ढेर पर फेंक दी थी, बस उसी तीली ने यह

भयंकर अग्निकाण्ड उपस्थित कर दिया। दियासलाई में जो गुप्त अग्निपुंज था, जब वह प्रज्वलित हो गया, तो एक महाशक्ति का रूप लेकर संसार के सामने आ खड़ा हुआ।

हमारा अध्ययन, सामायिक, उपवास, तपस्या, ब्रह्मचर्य आदि क्रियाकाण्ड एवं साधना— ये सब शक्ति के स्रोत हैं, तैजस् के पुंज हैं। उनमें से महाशक्ति का स्रोत प्रवाहित होता है, तैजस् की प्रचण्ड किरणें फूटती हैं, पर कब ? जब आत्मा के साथ उसकी रगड़ होती है। साधना आत्मा को छूती है। भावनाओं को स्पर्श करती है, तब उसका तेज-दीप्त होता है। उसमें 'रस' का प्रादुर्भाव होता है और आनन्द की अनुभूतियाँ उछलने लगती हैं। हजार और लाख दिया-सलाई भी वही काम करती हैं, जो एक दियासलाई करती है। वहाँ संख्या और गणना के आधार पर चलना ठीक नहीं होता, वहाँ तो एकमात्र उसकी शक्ति और तैजस् को देखा जाता है। यदि उसके मुँह पर ठीक से मसाला लगा है, ठीक से वह प्रज्वलित हो जाती है, तो एक ही सलाई काफी होती है, अन्यथा हजारों-लाखों सलाइयों का भी कोई मूल्य नहीं है।

जीवन में साधना का मूल्य उसके समय और उसकी गणना से नहीं आँका जाता। गणना के आधार पर, समय के आधार पर साधना का मूल्य आँकना भ्रान्ति है, गलत है। इस तरह से तो हम साधना की आत्मा को नहीं छूकर उसके देह से ही लिपटे रहते हैं, और तब उसमें प्रकाश और शक्ति, तेजस् और ज्योति का प्रादुर्भाव होना सम्भव ही नहीं है।

साधना के क्षेत्र में हमारे कुछ इस प्रकार के विश्वास और धारणाएँ स्थिर हो गई हैं कि अमुक तप कितना लम्बा होता है ? कितनी मालाएँ जपनी चाहिएँ ? कितने स्तोत्र पढ़ने चाहिएँ ? कितनी सामायिक करनी चाहिए और कितने व्रत या प्रत्याख्यान करने चाहिएँ ?

आचार्य कहते हैं कि यह जो लेखा-जोखा और गणना करने की बनिया पद्धति है, उसे साधना के साथ मत जोड़ो। धन की, सोने-चाँदी की और मणिमुक्ताओं की गणना करते-करते तुम्हारी आदत हो गई है कि हर एक बात को गिन कर देखा जाए। गणना, संख्या

और वजन के आधार पर उसका मूल्य स्थिर किया जाए। पर यह द्रव्यजगत् की बात भावजगत में नहीं चलती। वहाँ तो भाव का मूल्य है। म्यान का नहीं, तलवार का मूल्य है। "**मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान**"—की धारणा ही वहाँ चलती है। इसलिए साधना का मूल्य उसके भाव में है, अन्दर की तेजस्विता में है। यदि आपके अन्तःकरण में विचार शक्ति जागृत हुई है साधना हृदय को छू गई है और वह ज्योति प्रज्वलित हो उठी है, तो आपका फैसला अंतर्मुहूर्त में भी हो सकता है, कुछ ही क्षणों में आपकी साधना फलवती बन सकती है। अज्ञान अन्धकार का नाश करके ज्ञान का महाप्रकाश प्रदीप्त हो सकता है। और यदि आप में वह ज्योति नहीं जली है आत्मा के साथ उसकी रगड़ नहीं हुई है तो अंतर्मुहूर्त की बात क्या है, अनन्त-अनन्त काल तक भी कोई फैसला नहीं हो सकता। अनन्त काल बीत चुका और अनन्त काल और बीत सकता है, किन्तु मुक्ति उतनी ही दूर रह जाएगी, जितनी अनन्तकाल पहले थी। अनन्त काल की वह यात्रा आँखों पर पट्टी बाँधे घानी के बैल की यात्रा से अधिक कुछ भी नहीं है।

रगड़ लगी, ज्योति जगी :

महाकाल की राह अनन्त है, पथ अनन्त है और मंजिल बहुत दूर है। अनन्त-अनन्त यात्री कब से चले आ रहे हैं, चले क्या, भटक रहे हैं, और कहते हैं कि मंजिल नहीं मिल रही है। आचार्यों ने कहा है कि मंजिल क्या मिलेगी अभी तो राह भी नहीं मिली है। केवल चलना जैन साधना का लक्ष्य नहीं है, उसका लक्ष्य है राह पर चलना और चलने के ढंग से चलना। यदि मार्ग मिल गया है, और चलना शुरू कर दिया है तो मंजिल सामने खड़ी पुकारती नजर आएगी। कुछ ही क्षणों में चलने का फैसला हो जाता है और राही मंजिल को पा लेता है। लक्ष्य निश्चित किए बिना चलना, चलना नहीं है, भटकना है।

दियासलाई को जेब में या डिबिया में दबाए रखकर चाहे जितना प्रयत्न कीजिए, प्रकाश नहीं होगा। प्रकाश यदि करना है तो उसे निकालकर रगड़ना होगा। बस ठीक रगड़ लगी नहीं कि ज्योति जगी। फिर प्रकाश होते देर नहीं लगती। अन्धकार भाग जाता है और प्रकाश विहँस उठता है।

माता मरुदेवी का जीवन आप देखिए। वह ऐसी ही एक रगड़ से सहसा प्रज्वलित होता दिखाई देता है। चलते-चलते कुछ ही क्षणों में वह मंजिल पर पहुँचती दिखाई देती है। वह हाथी के हौदे पर बैठी है और जा रही है। कहाँ? भगवान् ऋषभदेव के दर्शन करने के लिए! दर्शन शब्द तो हमारी भाषा में है, वह तो जा रही है अपने पुत्र से मिलने के लिए। वह उन्हें भगवान् के रूप में नहीं, अपितु पुत्र के रूप में देख रही है। बहुत समय हो गया, पुत्र से मुलाकात किये। भरत को बार-बार उसने उलाहने दिए कि—"तू अपने पिता की खबर नहीं ले रहा है! वह कहाँ सूने जंगल में घूम रहा होगा, भूख-प्यास में उसकी कौन सुधि लेता होगा? कहाँ सोता होगा? कहाँ ठहरता होगा? कौन उसके साथ है? उसे क्या कष्ट है?" आदि बातें भरत से वह पूछा करती थी। उसके हृदय में ऋषभदेव के प्रति भक्ति नहीं, बल्कि मातृत्व का प्यार छलक रहा है।

जब भगवान् ऋषभदेव कैवल्य प्राप्त करके अयोध्या में आये और सम्राट् भरत को सूचना मिली, तो उन्होंने ~~सबसे पहले~~ माता मरुदेवी को सूचना दी- "दादी! तुम जो पिताजी के लिए बार-बार पूछती रहती थीं, वे आपके पुत्र आज अयोध्या-नगरी में आगए हैं, चलो उनसे मिलने के लिए।" बस फिर क्या देर थी, मरुदेवी हाथी के हौदे पर बैठकर चल पड़ी, पुत्र से मिलने के लिए। उसके पास 'प्रभु दर्शन' की भाषा नहीं थी। भाषा क्या, भावना भी नहीं थी। भगवान् के कैवल्य की बात भी उसकी समझ में नहीं आरही थी। जब नगर के बाहर आई और देव दुन्दुभियों की मधुर ध्वनि सुनी, पुष्पवृष्टि होती देखी, समवसरण की रचना देखी, और असंख्य देवी-देवताओं को स्वर्ग से धरती पर आते देखा, तो वह चकित हो गई! भरत से पूछा—"अरे भरत! यह सब क्या होरहा है?" तो भरत ने बताया— 'कि यह सब आपके पुत्र का ऐश्वर्य है, उन्हें कैवल्य ज्ञान प्राप्त हुआ है, और उसका उत्सव करने के लिए ये करोड़ों देव, दानव और मानव एकत्र हो रहे हैं।" भरत की बात सुनते ही मरुदेवी का विचार-प्रवाह बदल जाता है, वह वैराग्य की धारा में बह जाती है—कि मैं तो सोचती थी ऋषभ को बहुत कष्ट होंगे, भरत उसकी संभाल ही नहीं लेता, पर यहाँ तो बात ही दूसरी

है। जिस पुत्र के राग और स्नेह के कारण मेरा मन चिन्तित रहता था, रात-दिन उसके सुख के स्वप्न देखा करती थी, वह तो मेरे लिए कुछ भी नहीं सोच रहा है, उसने कभी मुझे सन्देश तक नहीं भेजा कि 'माँ, मैं आनन्द में हूँ, तुम चिन्ता न करना'। इसका इतना बड़ा ऐश्वर्य है, लाखों-करोड़ों देव-दानव और मानव इसकी सेवा में हैं। इसे भला माँ की क्या चिन्ता? मेरे मन में जो स्नेह है वह सब एकांगी है, निरर्थक है, झूठा है; मैं किधर बह रही हूँ! जो मेरी खबर तक नहीं लेता, उस पुत्र के लिए मैं इतनी अधिक स्नेह से अभिभूत क्यों हो रही हूँ।" मरुदेवी इस प्रकार प्रथम खिन्नता की भाव-धारा में बहती है, अनन्तर निर्मल वैराग्य का स्रोत अन्दर से फूट पड़ता है, मन की दिशाएँ बदल जाती हैं, चिन्तन की धाराएँ मोड़ ले लेती हैं। जो चिन्तन, जो विचार बाहर की दिशा में चल रहे थे वह अब अन्दर में आत्मा को छूने लगते हैं, उनमें अध्यात्म-भाव की ज्योति प्रज्वलित होती है, और कुछ ही क्षणों में वह ज्योति महाप्रकाश बन जाती है। अन्त में हाथी के हौदे पर बैठे ही बैठे केवल ज्ञान प्राप्त हो जाता है और कुछ ही क्षणों में वह मुक्ति भी प्राप्त कर लेती हैं।

'मन की साधना' के सम्बन्ध में यह विलक्षण घटना है। कहाँ तो शरीर को तपाते-तपाते, कष्ट सहते-सहते हजारों-लाखों वर्ष गुजर जाते हैं, पर मन पर से अज्ञान की परत नहीं हटती, विकार और वासना के बन्धन नहीं टूटते। और कहाँ कुछ ही क्षणों में, अन्तर्मुहूर्त्त में समस्त बन्धन चूर-चूर हो जाते हैं, विकार और वासना का विलय हो जाता है, आत्मा परम पवित्र, परम शुद्ध और परमात्मा बन जाता है।

इस घटना का फलितार्थ एक ही निकलता है कि साधना का तेज दीप्त हो जाता है, तो वह सब कर्ममलों को भस्मसात् कर डालता है। साधना के लिए कोई वेष, देश और पन्थ आदि अपेक्षित नहीं होते। ये ऊपरी चीजें सिर्फ ऊपर-ऊपर रहती हैं, अन्तस्तल को नहीं छू सकतीं। जैन दर्शन ने जो सिद्धों के पन्द्रह भेद माने हैं, उन में 'अन्य लिंगी सिद्ध' भी एक भेद माना है, और यह भेद स्पष्ट करता है कि साधना किसी पन्थ या तीर्थ में, कपड़ों या अन्य उप-

करणों में नहीं अटकती, वह तो आत्मा की अतल गहराई से उठने वाली लहर है जो इन भेद-प्रभेदों को अपने आप में समेटती हुई आगे निकल जाती है। माता मरुदेवी ने तो कोई मुनि वेष नहीं लिया था। रजोहरण, पात्र या अन्य कोई उपकरण, बाह्य चिह्न उनके पास नहीं थे। हाथी के हौदे पर बैठी थी, किंतु वहाँ पर भी उनकी मुक्ति अटकी नहीं, उसमें कोई रुकावट नहीं आई। चिन्तन और मनन की गहराई में जब उतरी, आत्मा की रगड़ मे साधना की ज्योति प्रज्वलित हुई, तो भगवान् ऋषभ देव ने घोषणा कर दी—**"मरुदेवी भगवई सिद्धा."** भगवती मरुदेवी सिद्ध हो गई।

शुद्धि ही सिद्धि है :

इन्हीं घटनाओं के आलोक में चिन्तन करते हुए एक जैनाचार्य ने कहा है—

> **'नाशाम्बरत्त्वे न सिताम्बरत्त्वे।**
> **न तर्कवादे न च तत्त्ववादे।**
> **न पक्ष सेवाश्रयणेन मुक्तिः**
> **कषाय-मुक्तिः किल मुक्ति रेव॥"**

नाशाम्बरत्त्वे—नग्न दिगम्बर बन जाने से ही कोई मुक्ति नहीं होती। चूँकि केवल कपड़े उतार देने से या नग्न-भ्रमण करने से यदि मुक्ति होती तो संसार के पशु-पक्षी, कीट-पतंग कौन कपड़े पहनते हैं? उनकी मुक्ति कहाँ अटक रही है? अतः मुक्ति के लिए 'नग्न' होना कोई जरूरी नहीं है।

'न सिताम्बरत्त्वे'—श्वेत वस्त्र पहनलेने मे मुक्ति हो जाती है, यह भी गलत समझ है। मुक्ति वस्त्रों में केन्द्रित नहीं है। श्वेत वस्त्र हों तो मुक्ति हो, अन्य पीला या गेरुआ, काला या लाल पहन लिया तो मुक्ति रुक गई, ऐसी कोई बात नहीं है। वस्त्र रहे, या न रहे, इससे मुक्ति का कोई सम्बन्ध नहीं है। मुक्ति इतनी साधारण वस्तु नहीं है कि वह वस्त्रों के झमेले में उलझी रहे।

आचार्य ने आगे कहा है **'न तर्क वादे न च तत्त्व वादे'**—जीवन में विचारों के जो अनेक प्रकार के वाद-विवाद चल रहे हैं, विचारों के जो द्वन्द्व चल रहे हैं, उनसे भी मुक्ति नहीं मिल सकती। तर्क-वितर्क करने से, न्याय और तर्कशास्त्र का अध्ययन कर लेने से मुक्ति का

परिज्ञान नहीं हो सकता। न तत्त्व वाद पर विश्वास करके चलने से ही मुक्ति मिल सकती है। यह सब तो बौद्धिक कसरतें हैं। इनसे विचारों में उलझन और भ्रान्ति ही पैदा होती है, चूँकि हरएक वाद अपने आपको संसार का सर्वोत्कृष्ट वाद स्थापित करके अन्य समस्त वादों और विचारों का निरस्कार करता चला जाता है, उन्हें मिथ्या करार देता रहता है। और इस प्रकार एक-दूसरे के प्रति वैमनस्य एवं विग्रह की परम्परा चलती रहती है। वाद-विवाद से कभी शान्ति नहीं हो सकती, ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता, और विचारों एवं आत्मा की विशुद्धि नहीं हो सकती।

प्रश्न है कि जब वेश से मुक्ति नहीं है, तर्कवाद या तत्त्ववाद से मुक्ति नहीं है, अपने सम्प्रदाय और पक्ष का प्रचार-प्रसार करने एवं उसके नियमों का पालन करने से भी मुक्ति नहीं प्राप्त होती, तो फिर मुक्ति कैसे प्राप्त होगी ? आचार्य ने कहा है—किनारे-किनारे घूमने से कभी महासागर के अनन्त अन्तस्तल में छिपी रत्न राशि हाथ नहीं लगती है। जरा गहराई में उतरो और देखो कि संसार कहाँ है ? जहाँ संसार है, उसके ठीक विरुद्ध दिशा में मुक्ति खड़ा है। आत्मा के भीतर छिपा हुआ कषाय संसार है। राग-द्वेष संसार है। मोह संसार है, आत्मा के विकार संसार हैं, इन सबसे मुक्त हो जाना ही मुक्ति है—**'कषाय मुक्तिः किल मुक्तिरेव'**। क्रोध, मान, माया और लोभरूप कषाय भावों से मुक्ति ही सच्ची मुक्ति है।

मुक्ति का अर्थ इतना ही नहीं कि शरीर का छूट जाना मात्र मुक्ति हो। मुक्ति जीवन के हर क्षेत्र में, हर चरण पर खड़ी है। हम जीवन के कदम-कदम पर मुक्ति का आनन्द ले सकते हैं हर चरण पर मुक्ति हमारे सामने रहती है। मानव को जीवन में कुछ कर्म करने होते हैं, इधर-उधर की चर्चा में कुछ विकार पूर्ण दृश्य भी उपस्थित होते हैं। परन्तु इन सब से साधक का क्या बनता-बिगड़ता है ? यदि हमारे मन में आसक्ति नहीं है, कषाय भाव नहीं है तो हम शुभाशुभ रूप में कर्म बन्धन से नहीं बंधते। इस प्रकार निर्लिप्तता के भाव से हम बन्धन में नहीं फँसते तो हर जगह हमारी मुक्ति है। आसक्ति एवं कषाय जब भावों में होंगे, तभी कर्म का बन्ध होगा। अन्यथा कर्म किए जाएँगे, पर वे हमें बन्धन में नहीं डाल सकेंगे। आप उनके बीच रहकर भी मुक्त रहेंगे और मुक्ति की दिशा में हर क्षण बढ़ते रहेंगे।

यदि आप क्रोध से प्रभावित होकर कर्म करते हैं, अहंकार से प्रेरित होकर या लोभ-लालच के वश प्रवृत्ति में फँस रहे हैं, तो कर्म-बन्ध होगा। किन्तु यदि आप वासना और इच्छा से मुक्त होकर शुद्ध भाव से कर्म कर रहे हैं, तो वह बन्धन का नहीं, अपितु मोक्ष का कारण होगा, उससे मुक्ति होगी। इसलिए जैन दर्शन का मूल अभिप्राय यह है कि अन्तर् की शुद्धि ही सिद्धि का सोपान है। जो भी प्रवृत्ति हो, वह मनःशुद्धिपूर्वक होनी चाहिए मन की कलुषता जब समाप्त हो जाएगी, तो शुद्ध विचार प्रकट होंगे, निर्मल भाव जागृत होंगे। और इस प्रकार जीवन में क्रमशः शुद्ध दशा आती जाएगी।

स्नेह भी बन्धन है :

जैन दर्शन यहाँ पर एक गम्भीर बात को स्पष्ट करता है कि मुक्ति के लिए जीवन में शुद्धदशा ही आनी चाहिए। जिस प्रकार अशुभ विचार, अशुभ वृत्ति बन्धन है, संसार है, उसी प्रकार शुभ विचार और शुभ वृत्ति भी बन्धन एवं संसार है।

जहाँ अशुभ है वहाँ तो संसार है ही किन्तु जहाँ शुभ है वहाँ भी संसार है। स्वर्ग भी संसार है, और नरक भी संसार है। शुभ-अशुभ से परे, स्वर्ग और नरक की सीमाओं के उस पार जो शुद्ध अध्यात्म की भावभूमि है, वही आपका लक्ष्य है, वहीं पर आपको अक्षय आनन्द का स्रोत मिलेगा, जगत् के समस्त बन्धनों से मुक्ति मिलेगी। शास्त्र ने यहाँ तक कहा है कि स्नेह यदि भगवान से है, उनकी भी इच्छा मन में है, तब भी वह संसार है, बन्धन है। अभिप्राय यह है कि जीवन में जहाँ भी चाह है आकर्षण है, चाहे वह शुभ का हो या अशुभ का, वह बन्धन ही है, संसार ही है। साधक के लिए वह भी त्याज्य है।

सूफी परम्परा में एक सन्त हो गये हैं—अजाली। कहा जाता है कि एकबार वे बहुत लम्बी साधना करते रहे थे, इस बीच एक दिन उनको आवाज आई—"तू क्या चाहता है ?"

अजाली ने कहा—"बस, मुझे तो तेरे मिलने की इच्छा है। और मुझे कुछ नहीं चाहिए।"

उधर से आवाज आई "जब तक मुझसे भी मिलने की इच्छा तेरे में शेष रह गई है, तब तक मैं नहीं मिलूँगा।"

यह बहुत बड़ी बात है, और बहुत दूर की बात है। जब तक मन में भगवान् से मिलने की इच्छा भी शेष है, उनके प्रति भी अनुराग है, तब तक मुक्ति नहीं हो सकती, आत्मा की शुद्धि नहीं हो सकती।

जैन परम्परा में एक प्रसंग आता है कि गणधर गौतम ने भगवान् से पूछा—"प्रभो! मेरे कई शिष्य केवल ज्ञानी हो गये हैं, मुक्त भी हो गये। मेरे शिष्यों के शिष्य भी भव-बन्धनों से मुक्त हो गए हैं। जो संसार के गली-कूचों में भटकते हुए आये, जिनका जीवन पापाचार और दुराचार की गन्दगी में सड़ता रहा, वे भी संयम आराधना के पथ पर आए, मन को साधना में रमाया और कैवल्य प्राप्त करके मुक्त हो गए, किन्तु बात क्या है कि मुझे अभी तक उसकी प्राप्ति नहीं हो रही है। मैं जब से आपकी शरण में आया हूँ बेले-बेले (दो-दो दिन के उपवास) धारण कर रहा हूं, अन्य भी साधना और तपस्या के प्रशस्त पथ पर बढ़ता ही रहा हूँ, हर प्रकार से सावधानी एवं सतर्कता रखता हूँ, किन्तु फिर भी मुझे केवल ज्ञान प्राप्त नहीं हो रहा है। यह बाधा क्यों आ रही है, क्या रुकावट है; क्या प्रतिबन्धक है मेरे कैवल्यज्ञान का?"

प्रभु महावीर ने गौतम के मन को इस प्रकार द्रवित एवं दीन होते देखकर कहा—"गौतम! तुम्हारे कैवल्य में रुकावट डालने वाला और कोई नहीं, केवल मैं हूँ?"

गौतम भगवान् की बात सुनकर चौंक पड़े—"प्रभ! आप कैसे रुकावट डाल रहे हैं? आप तो जन-जन के कल्याण के लिए अपना जीवन अर्पण करने वाले हैं। संसार को प्रकाश देने वाला सूर्य भी कहीं किसी के प्रकाश का आच्छादक बन सकता है?"

प्रभु ने वस्तुस्थिति का स्पष्टीकरण करते हुए कहा—'गौतम मैं स्वयं अपनी ओर से रुकावट नहीं डाल रहा हूँ, किन्तु तुम्हारे मन में मेरे प्रति जो अनुराग का भाव जगता है, मेरे प्रति स्नेह के सूत्र ने जो तुम्हारे हृदय को बाँध रखा है, बस वही अनुराग और स्नेह तुम्हारे कैवल्य ज्ञान की रुकावट है। जब कोई मेरी प्रशंसा करता है तो

तुम सुनकर बाग-बाग हो जाते हो, और इसके विपरीत मेरी निन्दा की बातें सुनकर तुम्हारा मन उसके प्रति घृणा से भर जाता है। इसका अर्थ है—तुम मेरे प्रति मोह बुद्धि रखते हो, मेरे सुख-दुःख और यश-अपयश में भिन्न-भिन्न मनोवृत्तियाँ रखते हो। तुम्हारे मन में स्वयं के प्रति समभाव की उच्चतम साधना जागृत हो रही है किन्तु मेरे अनुराग के कारण तुम्हारे मन में हर्ष एवं विषाद की अनुभूतियाँ पैदा होती हैं, प्रेम और घृणा की तरंगें उछलती हैं। बस मोह का यह सूक्ष्म रूप ही तुम्हारे कैवल्य का बाधक बन रहा है। तुम्हारी साधना की सिद्धि में मेरे प्रति यह स्नेह, अनुराग ही रुकावट डाल रहा है।"

गौतम के मन का यह सूक्ष्म-विश्लेषण हमें साधना के क्षेत्र में बहुत दूर, ऊँचाई पर ले जाकर खड़ा कर देता है, जहाँ साधारण साधक नहीं पहुँच सकता। भगवान् के प्रति भी मन मे अनुराग का अंश न रहने पाये, मोह और स्नेह की हलकी-सी तरंग भी नहीं उठे। जिस प्रकार हम अपने मान-सम्मान और सुख-दुःख में तटस्थ एवं समभाव रखते हैं, उसी प्रकार की समता और निरपेक्षता हमें भगवान् के प्रति भी रखनी चाहिए। भगवान् के प्रति श्रद्धा एक अलग बात है, किन्तु उस श्रद्धा में मन का रागात्मक सम्बन्ध दूसरी बात है। आदर्श के प्रति भी रागात्मक भाव नहीं आना चाहिए। यदि श्रद्धा के साथ मोह का अंश जुड़ गया तो वह श्रद्धा, मोह और आसक्ति बन गई ! स्नेह के ये विकल्प टूट जाने चाहिएँ, अन्यथा स्नेह सिद्धि का बाधक होगा।

आचार्यों ने मन की इस आसक्ति को, रागांश को बहुत ही सूक्ष्म रूप से पकड़ा है। राग का अंश जहाँ है वहाँ शुद्धि नहीं, अशुद्धि है मुक्ति नहीं, बन्ध है, और जहाँ शुद्धि नहीं, वहाँ सिद्धि नहीं, संसार है।

स्नेह और राग को एक चिकनाई की तरह बताते हुए कहा गया है कि किसी व्यक्ति ने शरीर पर तेल लगा रखा हो, और उधर से आँधी के साथ धूल उड़ती आ रही हो, तो धूल के कण वायुमण्डल में उड़ते हुए उस चिकनाई पर चिपट जाएँगे। संभव है, पहले कुछ क्षणों में यह प्रतीति नहीं हो कि धूल शरीर पर चिपट रही है, किन्तु धीरे-धीरे जब बहुत-सी धूल शरीर पर लग जाएगी और

चिकनाई के कारण शरीर से गहरे रूप में चिपट जाएगी, तो क्या झाड़ने का प्रयत्न करने से वह धूल उतर सकती है ? साफ हो सकती है ? नहीं। चूँकि चिकनाई के साथ धूल शरीर की चमड़ी से गहरी चिपट गई है। उसे साफ करने के लिए साबुन और पानी का बार-बार प्रयोग करना पड़ेगा। जब वह चिकनाई साफ होगी तभी धूल उतरेगी। अभिप्राय यह है कि चिकनाई छूटे बिना धूल नहीं उतर सकती। इसी प्रकार आत्मा के साथ जब राग की चिकनाई है, स्नेह का तेल लगा हुआ है तो साधक के जीवन में इच्छाओं और कामनाओं की, राग और द्वेष की जो धूल उछल रही है, तूफान और आँधी चल रही है, तो वह कर्म की धूल आत्मा के साथ चिपटेगी, उसके साथ घुल-मिल जाएगी, चूँकि वहाँ चिकनाई जो है ! कल्पना कीजिए, यदि आपके शरीर पर चिकनाई का अंश नहीं है, और कुछ धूल उड़कर लग गई है, तो वह एक दो झटके में ही साफ हो जाएगी, झाड़ देने से ही उतर जाएगी, थोड़ी-बहुत सूक्ष्म धूल रही तो जरा-सा पानी शरीर पर डालते ही साफ हो जाएगी। जितनी चिकनाहट कम, उतना ही बन्धन भी कम।

साधना के क्षेत्र में बढ़ने वाले साधक के लिए इसी दृष्टि का महत्त्व है कि उसकी आत्मा के साथ राग का अंश किस मात्रा में है ? कितना है ? यदि राग की क्षीणता हो चुकी है तो साधना शीघ्र ही फलवती हो जाएगी। उसके लिए दीर्घ साधना काल की अपेक्षा नहीं है। कुछ ही समय में वह सिद्धि के द्वार पर पहुँच सकता है और समस्त बन्धनों से मुक्ति पा सकता है। इसलिए आवश्यकता यही है कि साधना में विशुद्धि, तेजस्विता और निर्मलता जगे। जितनी अधिक विशुद्धि और तेजस्विता होगी, सिद्धि उतनी ही शीघ्र और निकट दिखाई देगी।

*

भगवान् महावीर के युग
की
एक महान् राजनीतिज्ञ नारी

महारानी मृगावती

★ उपाध्याय अमरमुनि

भारतीय धर्म, समाज एवं राजनीति में जिस प्रकार से पुरुषों ने अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है, भारतीय नारियों की भूमिका भी कम गौरव-पूर्ण नहीं रही है। भारतीय रमणियों ने जहाँ धर्म के क्षेत्र में वैराग्य-जीवन अपनाकर एक स्तुत्य पहल किया है, राजनीति में भी वैसी चामत्कारिक भूमिका निभाई कि विश्व विस्मय-विमुग्ध हो देखता रह गया।

प्रस्तुत है, कविश्रीजी की इस संदर्भ में भ० महावीर की समकालीन इतिहास प्रसिद्ध महिला रत्न महारानी का एक वीरत्व पूर्ण कथा-प्रसंग।

—संपादक]

कौशाम्बी नरेश शतानीक ने एकबार देश-विदेश के कुशल चित्रकारों को बुलाया और कहा—"एक अद्भुत चित्र-सभा बनाने की मेरी इच्छा है। जो चाहिए वे सब सुविधाएँ दी जाएँगी, किंतु चित्रसभा संसार की अद्वितीय सभा होनी चाहिए।" कलाप्रिय उदार नरेश की आज्ञा पाकर कलाकारों की कला खिल उठी। कलम ने जादू दिखाया। कुछ ही दिनों में सुन्दर चित्रसभा तैयार होगई।

कलाप्रिय नरेश चित्रसभा की अद्भुत कला के दर्शन करके अत्यन्त प्रसन्न हो रहे थे। विशाल-साम्राज्य की एक बहुत बड़ी कमी पूरी हुई देखकर राजा का मस्तक गर्व से जैसे दो गज ऊँचा हो उठा। अन्तःपुर के पार्श्व में स्थित चित्रकक्ष में राजा ने प्रवेश किया, तो संसार की प्रसिद्ध पद्मिनी, रूप और लावण्य की देवी अपनी ही महारानी मृगावती का अद्भुत चित्र देख कर राजा की

आँखों में अपूर्व प्रसन्नता चमक उठी। महारानी जैसे साक्षात् स्वयं राजा के सामने मुस्कराती खड़ी थी। परन्तु यह क्या? चित्र देखते-देखते राजा की प्रसन्नता रोष में बदल गई। आँखों में खून उतर आया। वे दहकते अंगारे-सी लाल सुर्ख हो उठीं, राजा ने कड़कती आवाज में पुकारा—'कहाँ है दुष्ट चित्रकार! यह हिम्मत!'

युवक चित्रकार थर-थर काँपता हुआ सामने खड़ा था। राजा ने कहा—"दुष्ट! मेरे अन्तःपुर को भी नहीं छोड़ा तूने? सिंह के जबड़ो में लगा माँस खाने की दुश्चेष्टा? कैसे अंकित किया तूने रानी की जाँघ पर का यह 'तिल'! मेरे सिवाय संसार के किसी अन्य पुरुष को यह ज्ञात नहीं, बता, तेरे को यह ज्ञात हुआ तो कैसे? दुश्चरित्र! जानता है, इस जघन्य पाप का क्या दण्ड होगा?"

चित्रकार ने पूरा साहस बटोर कर कहा—"महाराज! एकबार कुछ क्षण के लिए मैंने सिर्फ गवाक्ष की जाली में से रानी की मुखाकृति देखी है। उसके सिवाय मुझे नहीं मालूम महारानी के किसी भी अंग-प्रत्यंग का।"

"तो फिर यह जाँघ पर का तिल...? वत्स देशाधिपति शतानीक को भी मूर्ख बना रहे हो?"

"नहीं महाराज! बात यह हुई कि रानी की आँख पर भौंहें बनाते समय स्याही की एक बूँद उसकी जाँघ पर गिर गई। मैंने उसे पोंछ डाला। परन्तु वह फिर गिरी और मैंने सावधानी से फिर पोंछा। तीसरी बार फिर एक स्याही की बूँद वहीं गिरी, तो मैंने उसे रहने दिया। यह सोचकर कि अवश्य ही रानी के इस अंग पर कहीं तिल होना चाहिए, चूँकि चित्रकला के लिए मुझे यक्ष का वरदान जो है।"

"कैसा यक्ष का वरदान है तुझे?"—शतानीक ने पूछा।

साथी चित्रकारों ने भी इस बात की पुष्टि की—"महाराज! यक्ष के वरदान से इसकी यह कला अद्भुत है, किसी भी आकृति की झलक मात्र से यह उसका पूरा यथार्थ चित्र अंकित कर देता है।"

राजा ने रोष के साथ आश्चर्य प्रकट किया—"तो फिर इसकी परीक्षा होगी। यदि परिणाम सही नहीं आया, तो उसका दंड जानते हो क्या होगा? मृत्यु!!"

चित्रकार कलम हाथ में लेकर तैयार हो गया। राजा ने अपनी एक कुब्जा (कूबड़ी) दासी का जाली में से मुँह दिखलाया और कहा—"इसका यथार्थ चित्र अंकित करो।"

चित्रकार की तूलिका चोट खाई हुई नागिन की तरह बल खाकर चल पड़ी। देखते ही देखते रंगों का वह जादू हुआ कि कुछ ही क्षणों में कुब्जा का यथार्थ रूप चित्रपट पर उतर आया। राजा स्तंभित-सा देखता रहा। शतानीक के मन का वहम हवा हो गया, पर रोष अब भी शान्त नहीं हुआ। "रानी का ऐसा चित्र अंकित करने की धृष्टता की तो आखिर क्यों की? आज यहाँ तो कल तू अन्यत्र महारानी का चित्र बनाएगा।" बस इसी क्षोभ की मनःस्थिति में राजा ने चित्रकार का अँगूठा कटवाकर वत्स देश की सीमा से निकल जाने का आदेश दे दिया।

चित्रकार क्षुब्ध था। उसे अँगूठा कट जाने का उतना क्षोभ नहीं हुआ जितना कि अपनी कला का अपमान देखकर हुआ। वह मन ही मन तिलमिला उठा। उसने अपमान का बदला लेने की ठानी। कटे अंगूठे से ही रानी मृगावती का एक सुन्दर चित्र बनाया और अवन्ती के राजा चन्द्रप्रद्योत के समक्ष प्रस्तुत किया।

चन्द्र प्रद्योत सौन्दर्य का कीड़ा था। देश-विदेश की सुन्दरियों को चुराना, उन्हें प्राप्त करने के लिए युद्ध करना—यही उसकी राज्य-परम्परा थी। मृगावती संसार की अनन्यतम सुन्दरी थी। वह चन्द्रप्रद्योत की पत्नी शिवादेवी की सगी बहन थी, पर ये रिश्ते-नाते चन्द्रप्रद्योत के कामासक्त हृदय को नहीं रोक सके। मृगावती को प्राप्त करने के लिए उसने कौशाम्बी पर अकारण आक्रमण कर दिया।

कौशाम्बी के चारों ओर मालव की विशाल सेना ने घेरा डाल दिया। अचानक और अकारण हमले की सूचना पाकर शतानीक के हृदय को भयंकर आघात पहुँचा। इस आघात से उसका धैर्य टूट गया, मन भय से व्याकुल हो उठा। भय के कारण ऐसा अतिसार रोग हुआ कि आखिर शतानीक के प्राणों को ही ले बैठा। राजा की मृत्यु, शत्रु का आक्रमण और राजकुमार उदयन का दुधमुँहा बचपन; न युद्ध की तैयारी और न सेना में साहस! कौशाम्बी की प्रजा

भयभीत थी, राजमन्त्री चिंतातुर थे। पराजय और मौत सामने अट्टहास करते दिखाई दे रहे थे। इस विकट परिस्थिति को विधवा रानी मृगावती ने सँभाला। मृगावती सुदक्ष गृहिणी ही नहीं, चतुर राजनीतिज्ञ भी थी। चन्द्रप्रद्योत के आक्रमण का कारण वह जान चुकी थी। राजनीति का एक मोहरा उसने चला। दूत के साथ संदेश कहलाया—"महाराज! आप मेरे लिए इतना नर संहार क्यों कर रहे हैं? राजा की मृत्यु के बाद मृगावती आपकी शरण में नहीं आएगी, तो कहाँ जाएगी!"

चन्द्रप्रद्योत की वासना से अंधी आँखें सहसा चमक उठीं—"मृगावती मेरी शरण में आने को तैयार है....? हम, अब तो बन गया काम।" उसने मुस्कराते हुए दूत को पूरे समाचार पूछने के लिए निकट में बुला लिया।

दूत ने बात पूरी की—"हाँ तो महाराज! महारानी ने आगे कहलाया है कि अभी मैं पतिशोक में हूँ, मुझे आप और अधिक खिन्न न करें। आज वत्स देश अनाथ है। राजा की मृत्यु हो चुकी है, और राजकुमार उदयन अभी बालक ही है। आप जानते हैं, पड़ोस के शत्रु राजाओं की ओर से आक्रमण की दुरभिसन्धि कितनी भयंकर है, अतः अवन्ती के समान ही दुर्ग एवं प्राचीर आदि के रूप में कौशाम्बी की सुरक्षा व्यवस्था भी सुदृढ़ होनी चाहिए और यह सब आपको ही करना है। वत्स देश का गौरव आपके हाथों में है। हम आपके भरोसे हैं।"

प्रणयपिपासु चन्द्रप्रद्योत को लगा जैसे चिड़िया उसके जाल में फँस चुकी है। उसको सब तरह प्रसन्न रखना ही प्रणय की सफलता होगी। जो आक्रमण करने आया था वह अब एक रक्षक की तरह नगर के कोर कंगूरों का पुनः निर्माण कराने में जुट गया। अवन्ती से विशेष प्रकार की ईंट लाई गई। दुर्ग निर्माण के विशेषज्ञ कारीगरों की देखरेख में दुर्ग का पुनर्निर्माण शुरू हो गया। कौशाम्बी की हर प्रकार की सुरक्षा-व्यवस्था के निर्माण का प्रबंध कर वह प्रसन्न मन से अवन्ती लौट आया और मृगावती के प्रणय के मधुर सपने देखने लगा।

समय बीतता गया। इधर कौशाम्बी दुर्ग-निर्माण और सैन्य-

सज्जा आदि की दृष्टि से अपराजित स्थिति में पहुँच रही थी और उधर चन्द्रप्रद्योत को मृगावती की प्रतीक्षा असह्य होती जा रही थी। "अब तक उसका कोई भी सन्देश नहीं आया! क्यों क्या बात है! कोई धोखा तो नहीं है?"—यह सोचकर प्रद्योत ने अपना विशेष दूत कौशाम्बी भेजा, और मृगावती से प्रणय याचना करते हुए उसे शीघ्र अवन्ती के राजमहलों को सुशोभित करने की प्रार्थना की। दूत ने मृगावती के समक्ष प्रद्योत का सन्देश पत्र रखा तो रानी उसे पढ़ कर प्रद्योत की मूर्खता पर मन-ही-मन हँस पड़ी। सचमुच नारी जादू का एक दर्पण है, जिसके सामने आते ही पुरुष अपने आपको भूल जाता है, पागल हो जाता है।

"दूत! अवन्ती पति से कहना, सूर्य के लिए हजारों कमलिनी प्रेम पिपासु हो सकती हैं, पर कमलिनी के लिए प्रणय का प्रतीक सूर्य एक ही होता है। मृगावती सती है। उसका सूर्य अस्ताचल में सो गया, अब वह कभी खिल नहीं सकती। संसार के सभी पुरुष पिता, बन्धु और पुत्र की कोटि में हैं।"

मृगावती का उत्तर लेकर दूत अवन्ती पहुँचा। चन्द्रप्रद्योत ने ज्यों ही मृगावती का उत्तर सुना कि उसके रोम रोम में आग लग गई—'नारी होकर इतनी धूर्त! दगाबाज! उसने मुझे सचमुच उल्लू बना दिया।" मृगावती की इस धोखेबाजी पर राजा चन्द्रप्रद्योत को एक ओर रोष उमड़ने लगा तो दूसरी ओर अपनी बेवकूफी पर पश्चात्ताप भी होने लगा। उसे लगा कि "संसार बड़ा दुष्ट है, वह उसकी सदाशयता का दुरुपयोग कर रहा है। एक बार राजगृह के चारों ओर सेना का मजबूत घेरा डालने पर अभयकुमार ने उसे इसी प्रकार मीठी-मीठी बातों में लेकर उल्लू बनाया था और युद्ध भूमि से बिना युद्ध किए ही भगा दिया था। इस बार एक चतुर नारी ने प्यार के भुलावे में डालकर उसे किस बुरी तरह से छला और उलटी उससे अपने राज्य की किलेबन्दी मजबूत करवाकर खाली हाथ लौटा दिया, प्रणय के आश्वासन पर! वह बार-बार मूर्ख बनाया जाता रहा है। पर नहीं, अब आँख खुल चुकी है। चन्द्रप्रद्योत इस धोके का, अपमान का खुलकर बदला लेगा।" —प्रद्योत ने तुरंत सेना को कौशाम्बी की ओर बढ़ जाने का आदेश दे दिया।

प्रद्योत एक कुचले हुए सर्प की तरह फुफकार रहा था। अपमान का बदला लेने के लिए उसकी भुजाएं फड़क रही थीं। बस, आज्ञा की देर थी, कौशाम्बी के चारों ओर उसकी विशाल सेना महासागर की तरह लहराने लगी। आक्रमण झंझावात की तरह होता रहा। पर, नगर के दुर्ग और द्वार तो उसी ने सुदृढ़ एवं अभेद्य बनवाये थे। अतः आज उन्हें तोड़ने में स्वयं प्रद्योत को ही नाकों चने चबाने पड़ रहे थे। मियाँ की जूती मियां के शिर! मस्त हाथियों के कुम्भस्थल कौशाम्बी के वज्र-कपाट द्वारों से टकराकर रक्तस्नात होते रहे, पर, कौशाम्बी के द्वार नहीं टूटे—नहीं टूटे!।

दिन पर दिन बीतते चले गए। प्रद्योत बाहर घेरा डाले बैठा रहा। उसका कोई भी प्रयत्न सफल नहीं हो रहा था। युद्ध चल रहा था। प्राचीर के भीतर में बंद नागरिक भय से त्रस्त थे। 'कुछ ही दिनों में भयंकर अन्न संकट का सामना करना पड़ेगा'—इस आशंका से सभी चिन्तित थे। रानी मृगावती प्राणों को हथेली में लिए बैठी थी। कामी प्रद्योत उसी के सौन्दर्य का दीवाना है, उसके लिए ही यह विकट संकट उपस्थित हुआ है। अब सतीत्व की रक्षा के लिए प्राणों की आहुति देनी पड़ेगी। पर, यह आहुति अज्ञान या आवेश वश चिता में कूद पड़ने से नहीं दी जा सकती। वह क्या बलिदान, जिसमें वह ज्योति न हो, जिसके दिव्य प्रकाश में भविष्य के युग अपना रास्ता देख सकें।" रानी इन्हीं विचारों में डूब रही थी।

संकट की घड़ियों में कभी-कभी भगवान् भक्तों की रक्षा के लिए स्वयं आ जाते हैं। भक्तों का यह विश्वास सत्य निकला। रानी मृगावती ने सुना कि कौशाम्बी के उद्यान में श्रमण भगवान महावीर पधारे हैं। नगर के द्वार बन्द थे, कोई दर्शन करने को जाये भी तो कैसे? रानी ने अपने मंत्रियों को बुलाया। राजकुमार उदयन भी उपस्थित हुआ। रानी ने कहा—"मैं भगवान् महावीर के दर्शन करने के लिए जाऊँगी, नगर के द्वार खोल दिए जायँ।"

रानी का विचित्र आदेश सुनकर मंत्री और सेनापति स्तम्भित रह गए। बोले—"महारानी! बाहर में शत्रु घेराबन्दी किए बैठा है, दरवाजे तोड़ने का दम तोड़ प्रयत्न कर रहा है। और हम दरवाजे खोलकर उसका मार्ग सुगम कर दें, अपनी मौत को स्वयं ही निमन्त्रण देकर बुला लें! असम्भव है यह।"

रानी ने कहा—"अभय का देवता हमारे नगर की सीमा में बैठा है, फिर भय कैसा ? बहादुर सामन्तो ! धीरज और विश्वास से काम लो। ताकत के साथ ताकत की टक्कर में कौशाम्बी की विजय हो सकती है, पर कितना रक्तपात ! मैं कहती हूँ, दरवाजे खोल दो, कौशाम्बी के उद्धार का सहज ही एक सुगम मार्ग निकल आया है।"

राजमाता के आदेश से नगर का मुख्य द्वार खोल दिया गया। मन्त्री और सेनापति का हृदय अब भी धड़क रहा था। किन्तु चतुर रानी की बुद्धिमानी पर उन्हें अटल विश्वास था। मृगावती श्वेत परिधान पहने, भगवान् के दर्शनों के लिए निकल पड़ी और उसके पीछे-पीछे नगर के असंख्य नर-नारी जय घोष करते हुए प्रभु की वन्दना करने को चल पड़े।

चन्द्रप्रद्योत के प्रचण्ड सैनिक स्तब्ध रह गए। जड़ मूरत की तरह अवाक् खड़े देखते रहे। यह थी भौतिक शक्ति पर आध्यात्मिक शक्ति की अपराजेय विजय।

राजमाता भगवान् महावीर की धर्म सभा में पहुँची। चन्द्रप्रद्योत भी वहीं एक ओर शान्त सिंह की तरह प्रभु का उपदेश सुन रहा था। शिकार सामने था, पर क्या मजाल जो जीभ लपलपा जाए ! क्रूर यमराज का अवतार वहाँ करुणामूर्ति बनकर बैठा था। प्रभु की वह अद्‌भुत उपदेश धारा बही, कि पापियों के हृदय का चिरलिप्त मल धुल कर साफ हो गया। सुप्त आत्माएँ जाग उठीं।

धर्मदेशना सुनकर मृगावती भगवान् महावीर के समक्ष उपस्थित हुई। बोली—"प्रभु ! मैं संसार से उद्विग्न हो चुकी हूँ। विषय-तृष्णा की आग शान्त हो गई है। मेरा मन अब परम शान्ति चाहता है, प्रभु चरणों में प्रव्रजित होकर आत्म-साधना के मार्ग पर बढ़ना चाहती हूँ।"

प्रभु ने धीर-गंभीर स्वर में कहा—"**जहा सुहं देवाणुप्पिया मा पडिबंधं करेह** !—देवी, तुम्हें जैसे सुख हो, वैसे करो। सत्कार्य में विलम्ब न करो।"

मृगावती ने कहा—"प्रभो ! मैं आपके श्रीचरणों में दीक्षित होऊँ, इससे पहले महाराज चन्द्रप्रद्योत से दो बातें निवेदन करना चाहती हूँ। पहली यह कि मैंने परिस्थिति वश उन्हें झूठा आश्वासन

देकर धोखा दिया है, इससे उनके मन को भारी चोट पहुँची होगी। पर, अपने धर्म और देश की रक्षा के लिए यह बहुत जरूरी था। अस्तु, मैं उसके लिए सम्राट् से क्षमा मांगती हूँ"—रानी ने हाथ जोड़कर चन्द्रप्रद्योत की ओर देखा।

चन्द्रप्रद्योत लज्जावश भीतर-ही-भीतर गड़ा जा रहा था। मृगावती के जुड़े हुए हाथों के सामने उसके हाथ अपने आप जुड़ गए।

"दूसरी बात कौशाम्बी का भविष्य उनके हाथों में है। उदयन के वे मौसा है। उदयन अभी बालक है, इसकी जिम्मेदारी पिता के रूप में वे निभाएँगे, मैं यह वचन चाहती हूँ"—बात कहते-कहते रानी ने कुमार उदयन का हाथ चन्द्रप्रद्योत के हाथ में पकड़ा दिया।

सभा में सन्नाटा छाया हुआ था। सब लोग महारानी के साहस और विवेक पूर्ण कर्तृत्व को विस्मय-विमुग्ध दृष्टि से चुपचाप अपलक निहार रहे थे। कुमार उदयन चन्द्रप्रद्योत की गोद में जा बैठा। प्रद्योत की सुप्त मानवता जागृत हो उठी! उसके क्रूर हृदय में स्नेह के अंकुर फूट पड़े और उसके हाथ, जिनमें तलवार चमचमाती रहती थी, वात्सल्य से सराबोर होकर उदयन के मस्तक को दुलार उठे। युद्धोन्मत्त राजा का हृदय प्रेम के समक्ष विजित हो गया। उसके मुँह से वाणी नहीं फूट सकी, पर, आँखें सजल होकर अपने किए पर पश्चात्ताप करने लगी थीं।

रानी मृगावती प्रभु महावीर के चरणों में आर्या चन्दना के पास दीक्षित होगई। चन्द्रप्रद्योत की आठ रानियाँ भी इस दिव्य-प्रसंग पर प्रबुद्ध होकर साध्वी बन गईं। प्रभु महावीर की अमृत वाणी का जिसे भी स्पर्श मिला वह अमृत हो उठा।

चन्द्रप्रद्योत कौशाम्बी में आया, पर आक्रांता बन कर नहीं, अभिभावक बन कर। अपना 'चंड' रूप लेकर नहीं, अपितु शान्त 'चन्द्र' की शीतल रश्मियाँ लेकर। उदयन का राज्याभिषेक उत्सव धूमधाम से किया गया। चन्द्रप्रद्योत ने उसे आशीर्वाद दिया और कौशाम्बी का घनिष्ट मित्र बन कर अवन्ती को लौट गया।

—त्रिषष्टिशलाका १०।८

✗ उपाध्याय अमरमुनि

धर्मयुद्ध का आदर्श :

बंगला देश मुक्ति के संदर्भ में :

युद्ध होते हैं, किन्तु युद्ध का अर्थ यह नहीं कि सभी युद्ध एक-जैसे ही होते हैं। एक तो युद्ध वह होता है जो धर्म के लिए लड़ा जाता है, इसे धर्म-युद्ध कहते हैं, दूसरा अधर्म के लिए लड़ा जाता है, जिसे अधर्म युद्ध कहा जाता है। धर्मयुद्ध वास्तव में हिंसा का उतना नहीं, जितना कि अहिंसा का अंग है। बंगला देश की शरणागत रक्षा हेतु जो भारत युद्ध लड़ रहा है, यह धर्म-युद्ध ही है।

विशेष प्रस्तुत है इस सामयिक समस्या पर श्रद्धेय कवि श्री जी का ६-१२-७१ को दिया गया युक्ति-युक्त प्रवचन—सम्पादक]

अहिंसा और हिंसा की विवेचना बहुत पूर्व काल से होती आ रही है। अबतक जितने भी मनीषी-विचारक हुए हैं, सबों ने इस पर बड़ी सूक्ष्मता से विचार किया है। किन्तु फिर भी बहुत बार लोग गड़बड़ा जाते हैं कि वास्तव में अहिंसा और हिंसा का सही रूप क्या है? मोटे तौर पर द्रव्य हिंसा और भाव हिंसा के दो रूपों में विभाजित करके हिंसा की विवेचना की जाती है। किन्तु हिंसा के वास्तव में चार रूप हैं—(१) द्रव्य हिंसा—इसमें सिर्फ बाहर में हिंसा होती है, (२) भाव हिंसा—इसमें भावना मात्र से हिंसा होती है, (३) द्रव्य + भाव हिंसा—इसमें द्रव्य और भाव—दोनों प्रकार की हिंसा होती है, यह हिंसा का प्रचण्ड रूप है। और (४) न द्रव्य + न भाव हिंसा—इसमें न अन्दर में हिंसा होती है, न बाहर में। और यह हिंसा का शून्य भंग अर्थात् प्रकार है! अतः यह चतुर्थरूप वस्तुतः अहिंसा ही है।

जैन दर्शन में अहिंसा का बोलबाला है। इसमें अहिंसा सर्वोच्च शिखर के रूप में दीप्तिमान है। जैन साधना में इसका

बड़ा विशद् महत्त्व है। जैन धर्म-साधना का कण-कण अहिंसा से अनुप्राणित है। शास्त्र के शास्त्र इस पर लिखे गये हैं। "पुरुषार्थ सिद्धि उपाय" एक ऐसा ही ग्रन्थ है, जिसमें हिंसा और अहिंसा का सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है। आचार्य हरिभद्र और आचार्य हेमचन्द्र शुभचन्द्र आदि की रचनाओं में भी हिंसा और अहिंसा की गम्भीर विवेचना उपलब्ध है।

किन्तु विचारणीय बात यह है कि जब तक जीवन है, तब तक इसमें हिंसा तो रहती ही है। हिंसा का क्रम निरंतर चलता ही रहता है। चलने-फिरने में हिंसा है, खाने-पीने में हिंसा है। धरती पर असंख्य कीटाणु फिरते हैं, जिन्हें माइक्रो-स्कोप से स्पष्ट देखा जा सकता है, कदम रखते ही उनका संहार हो जाता है। हवा में भी असंख्य सूक्ष्म कीटाणु हैं, जो शास्त्रोक्त वायुकायिक जीवों के अतिरिक्त हैं, शरीर से लगते हर झोंके के साथ उनका सर्वनाश होता रहता है। हर साँस मे प्राणी मर रहे है। व्यक्ति के अपने शरीर में भी मांस, मज्जा, रक्त, मलमूत्र आदि में भी प्रतिक्षण असंख्य प्राणी जनमते-मरते रहते हैं। प्रश्न है, इस स्थिति में हिंसा से कैसे बचा जा सकता है ? अहिंसा का पालन कैसे हो सकता है ? जैन परम्परा इसका उत्तर द्रव्य और भाव के द्वारा देती है। यदि साधक जाग्रत है, उसके मन में अहिंसा का विवेक बोध है, हिंसा की वृत्ति या संकल्प नहीं है, तो वह बाहर में हिंसा होने पर भी अन्दर में अहिंसक ही है। यह भावशून्य द्रव्य हिंसा केवल बाह्य व्यवहार में कथनमात्र की हिंसा है, पापकर्म का बन्ध करने वाली हिंसा नहीं है। इस प्रकार हिंसा की भावना से मुक्त मनःस्थिति में द्रव्य हिंसा होने पर भी अहिंसा धर्म का परिपालन अक्षुण्ण है।

अहिंसा धर्म के परिपालन का एक दूसरा रूप और है। वह प्रवृत्ति में हिंसा और अहिंसा की मात्रा के आधार पर है। कल्पना कीजिए, कोई एक प्रवृत्ति है, जिसमें हिंसा की मात्रा कम है, किन्तु अहिंसा का भाग अधिक है, तो यह भी अहिंसा की साधना के क्षेत्र में आ जाता है। हिंसा और अहिंसा का केवल वर्तमान पक्ष ही नहीं, भविष्य पक्ष भी देखना आवश्यक है। यदि वर्तमान में हिंसा होती है, किन्तु उसके द्वारा भविष्य में अहिंसा की विपुल मात्रा परिलक्षित होती है, तो वह वर्तमान की हिंसा भी अहिंसा की साधक

हो जाती है। इसके विपरीत यदि वर्तमान में अहिंसा अल्पमात्रा में है, किन्तु भविष्य में उससे प्रचुर मात्रा में हिंसा फूट पड़ने की स्थिति है, तो यह वर्तमान की क्षुद्र अहिंसा अहिंसा के साधनाक्षेत्र में नहीं आती है।

अहिंसा का सही रूप :

गहराई से विचार करने पर हम देखते हैं कि हिंसा के दो रूप चल रहे होते हैं। एक लम्बी खूँखार हिंसा होती है और दूसरी, उस निर्दय एवं क्रूर हिंसा को रोकने के लिए एक छोटी हिंसा होती है। यहाँ यही विचारणीय है कि क्या हम दोनों को एक समान हिंसा कह सकते हैं? नहीं! स्पष्ट है कि एक लम्बी हिंसा अर्थात् एक बहुत बड़ी हिंसा को रोकने के लिए जो एक छोटी हिंसा होती है—भले ही इसमें प्रत्यक्षतः प्रचण्ड हिंसा क्यों न होती हो—वह हिंसा की एकान्त श्रेणी में नहीं आ सकती। कल्पना कीजिए, शरीर में एक जहरीला फोड़ा हो गया है। उस फोड़े को साफ करना है। यदि उसे साफ नहीं किया जाता है तो सारा शरीर ही बर्बाद हो जाता है। एक अँगुली के जहर को निकालकर पूरे शरीर को बचाना होता है। इसके लिए जरूरी होने पर उस विषदिग्ध अँगुली को काटकर शरीर से अलग भी कर दिया जाता है और पूरे शरीर को समाप्त होने से बचा लिया जाता है। अभिप्राय यह है कि एक छोटे अंग का विष, जो पूरे शरीर में फैलकर जीवन को ही नष्ट करने वाला हो, तो उस समय एक हाथ, एक पैर या एक अँगुली को काटे जाने का मोह नहीं किया जाता। यह नहीं सोचा जाता कि उसे काटा जाए या नहीं काटा जाए। स्पष्ट है, सारे शरीर को बचाने के लिए एक अंग को काट दिया जाता है और सारे शरीर को बचा लिया जाता है। इस उदाहरण के सन्दर्भ में हमारी यह परम्परा है, जैन दर्शन के अनुसार कि जहाँ बड़ी हिंसा होने वाली है, या हो रही हो, तो वहाँ छोटी हिंसा का जो प्रयोग है, वह एक प्रकार से अहिंसा का ही रूप है। अहिंसा इसलिए है, चूँकि वह एक बड़ी हिंसा को रोकने के लिए है। वह हिंसा तो है, लेकिन इस हिंसा के पीछे दया छिपी हुई है, उसके मूल में करुणा छिपी हुई है और उसके पीछे एक महान् उदात्त भावना है कि यह जो बड़ी

हिंसा हो रही है, उसे किसी तरह समाप्त किया जाए। इसी कारण इसको जैन दर्शन के अन्दर आदर दिया गया है।

युद्ध और अहिंसा : और नैतिक आदर्श :

विचार कीजिए कि रावण सीता को चुराकर ले जाता है। और विरोध में सीता के लिए रामचन्द्र जी लंका पर आक्रमण करते हैं। इस प्रकार एक भयंकर युद्ध हो जाता है। प्रश्न केवल एक सीता का है। और उसमें भी सीता को कोई कतल तो नहीं कर रहा था। सीता की कोई हिंसा तो हो नहीं रही थी। लेकिन विचारणीय तो यह है कि किसी को मार देना ही तो हिंसा नहीं कही जाती। बल्कि किसी के नैतिक जीवन को बर्बाद कर देना भी हिंसा है। क्योंकि अनैतिकता अपसे आप में स्वयं हिंसा हो जाती है। विचार कीजिए, रावण ने एक सीता का अपहरण कर जो सामाजिक अन्याय किया है, यदि उस अन्याय को नहीं रोका गया, तो अन्याय जनमानस पर हावी हो जाता है, न्याय की प्रतिष्ठा ध्वस्त हो जाती है, और उसकी देखादेखी भविष्य में और भी अन्याय फैल सकता है। इस दृष्टि से किया गया अन्याय का प्रतिकार धर्म के क्षेत्र में आता है।

राजनीति के अंदर दंड की जो परम्परा है, वह भी इसलिए है कि जो अन्याय और अत्याचार का दायरा लम्बा होता है, फैलता जाता है, उस पर नियंत्रण किया जाए, क्योंकि यदि उसे नियंत्रित नहीं किया जाएगा तो वह निरंतर फैलता चला जाएगा। अतः उसको रोकने के लिए अमुक प्रकार के कदम उठाये जाते हैं, जिससे कि एक छोटे कदम के द्वारा, वह जो बड़े कदम के रूप में अन्याय, अत्याचार होने वाला है, उसको रोका जाए। प्रस्तुत प्रसंग में यदि केवल बाहर में ही स्थूल दृष्टि से देखा जाए, तो यही कहेंगे कि राम ने एक सीता के लिए लाखों लोगों को मौत के घाट उतार दिया। यह तो बहुत बड़ी हिंसा हो गई ! एक के लिए अनेकों का संहार ! लेकिन नहीं, यह तो एक छोटी हिंसा है। और वह जो उचित प्रतिकार न करने पर अन्याय-अत्याचार अनर्गल रूप पकड़ता, वह बड़ी हिंसा होती। तो, उस बड़ी हिंसा को रोकने के लिए ही युद्ध के रूप में यह छोटी हिंसा लाजमी होगई थी। इसलिए राम की ओर से जो युद्ध लड़ा गया था, वह धर्मयुद्ध था। इसके विपरीत

रावण की तरफ से जो युद्ध लड़ा गया, यह अधर्म युद्ध था। युद्ध एक ही है; और इसमें दोनों ओर हिंसा हुई है, दोनों ओर से मारे गए हैं लाखों आदमी लेकिन एक धर्मयुद्ध माना जाता है और एक अधर्म युद्ध माना जाता है। ऐसा क्यों माना जाता है? ऐसा इसलिए माना जाता है कि राम के मन में एक उदात्त नैतिक आदर्श है। उनका युद्ध किसी अनैतिक धरातल पर नहीं है, किसी भोग वासना की पूर्ति के लिए या राज्यलिप्सा के लिए नहीं है, बल्कि वह सतीत्व की रक्षा के लिए और अन्याय-अत्याचार की परम्परा को, जो कि जन-जीवन में बढ़ती जा रही है, रोकने के लिए है। इसी दृष्टि से विचार करने पर हम देखते हैं कि यह जो वर्तमान में पाकिस्तान और हिन्दुस्तान का युद्ध चल रहा है, उसका भी यथोचित विश्लेषण किया जाना चाहिए। विश्लेषण के अभाव में हमारे यहाँ कभी-कभी काफी भयंकर भूलें हुई हैं। और उनके दुष्परिणाम भारत को हजारों वर्षों तक भोगने पड़े हैं।

अहिंसा सम्बन्धी गलत धारणाएँ :

हमारे समक्ष हिन्दू सम्राट् पृथ्वीराज का ज्वलंत उदाहरण है। कहा जाता है कि जब मोहम्मद गोरी भारत पर आक्रमण करने आया, उस समय भारत की शक्ति इतनी सुदृढ़ थी कि वह हार कर चला गया। वह फिर आया और फिर पराजित होकर लौट गया, फिर आया और फिर पराजित हुआ। इस प्रकार वह कई बार आया और पराजित हुआ। उस समय भारत की रणशक्ति बहुत बड़ी थी। बड़े-बड़े रणबांकुरे वीर थे यहाँ। अतः बारबार उसे यहाँ आकर पराजित हो जाना पड़ा। किंतु एकबार उसे पता लग गया कि ये जो हिन्दू हैं, गाय पर आक्रमण नहीं करते। अतः उस धूर्त्त ने क्या काम किया कि अपने नये आक्रमण में सेना के आगे गायों को रखा। आगे-आगे गायें चल रही थीं और पीछे-पीछे उसकी सेनाएँ युद्ध के लिए बढ़ रही थीं। अब यहाँ के वीर राजपूत धर्माधर्म की विचित्र उलझन में पड़ गए। उनमें अद्भुत शक्ति थी लड़ने की। कई बार गोरी को हराया भी था। लेकिन इस बार वे गड़बड़ा गए कि भाई, युद्ध तो कर रहे हैं, लेकिन यदि किसी गाय को बाण लग गया और गाय मर गई तो गो-हत्या का पाप

लग जाएगा। और यह बहुत बड़ा भयंकर पाप होगा। बस, इधर वीर राजपूत गायों को बचाने के विचार में उलझ गए और उधर शत्रु को तो कोई मतलब था नहीं इन बातों से। लड़ाई होती रही। गायों को बचाने के लिए राजपूत पीछे हटते रहे, निर्णायक प्रत्याक्रमण नहीं कर सके। परिणाम यह हुआ कि आखिर राजपूत सेना, जो विजय प्राप्त कर सकती थी, जिसमें भरपूर ताकत थी लड़ने की और विजय प्राप्त करने की, वह पराजित हो गई और देश गुलाम हो गया।

यहाँ यदि आप विश्लेषण करते हैं ठीक तरह से, तो विचार करना पड़ेगा कि यह जो गोहत्या के सम्बन्ध में चिन्तन था, वह कितनी गलत दिशा में था। वीर राजपूतों ने यह तो देखा कि वर्तमान में हमारे बाणों से संभव है कुछ गाय मर जाएँ, किन्तु उन्होंने भविष्य को नहीं देखा कि क्या होने वाला है? आने वाले आक्रमण-कारियों के लिए तो गाय-भैंस जैसा कुछ भी विचारणीय न था। यह सब तो उनके भक्ष्य ही थे। उन थोड़ी-सी गायों को मारने या बचाने के पाप पुण्य का अथवा हिंसा-अहिंसा का कोई मूल्य नहीं था उनकी दृष्टि में। अतः वे पूरी शक्ति से लड़े और जीते। इस युद्ध के सम्बन्ध में आप विचार करके देखेंगे तो आपको मालूम होगा कि उन थोड़ी-बहुत गायों को बचाने का क्या अर्थ रहा? कुछ गायों की रक्षा के काम में वे पराजित हो गये देश गुलाम हो गया। इतिहास पर नजर डालिए, इसके बाद कितनी गोहत्याएँ हुईं, कितनी मानव-हिंसाएँ हुईं और कितने अनाचार-दुराचार और कितने पापाचार हुए हैं। देश मिट्टी में मिलता चला गया और भारत की भव्य संस्कृति, सभ्यता, कल्चर (Culture) सब कुछ समाप्त होती चली गई। धर्म परम्पराओं को कितनी क्षति पहुंची। धर्म परम्पराओं को इस तरह से बर्बाद किया गया कि उनका निर्मल रूप ही विकृत हो गया। केवल गायों का ही सवाल नहीं रहा। हजारों माताओं और बहनों की बेइज्जतियाँ भी हुई। यह हिन्दू-मुसलमान का सवाल नहीं है। इस प्रकार के सवालों में मुझे कोई दिलचस्पी नहीं है और न अपने आप में ये कोई अच्छे सवाल ही हैं। सवाल तो सिर्फ इतना है कि समय पर अन्याय का उचित प्रतिकार न करने से भविष्य में क्या होता है? हिन्दू हो या मुसलमान, कोई भी हो,

अन्याय का प्रतिकार होना चाहिए, केवल वर्तमान की हिंसा या अहिंसा को न देखकर, उसके भविष्य कालीन दूरगामी परिणामों को देखना चाहिए। वर्तमान की सीमित दृष्टि कभी-कभी सर्वनाश कर डालती है।

राजा चेटक का धर्म युद्ध :

इस बड़ी और छोटी हिंसा के विश्लेषण को और अधिक स्पष्ट करने के लिए मैं एक उदाहरण आपके समक्ष रख रहा हूँ—वह है कूणिक और चेड़ा राजा (राजा चेटक) के युद्ध का। भगवान् महावीर के समय का यह बहुत बड़ा भयानक युद्ध था, जिसका उल्लेख तत्कालीन धर्म परम्पराओं के साहित्य में है। सुप्रसिद्ध वैशाली गणतन्त्र के मान्य अध्यक्ष राजा चेटक एक महान् बारह व्रतधारी श्रावक थे। दूसरी ओर मगध सम्राट कूणिक थे, जिसने कि वैशाली पर आक्रमण किया था। उक्त युद्ध के मूल में एक शरणागत का प्रश्न था। प्रसंग यह है कि कूणिक अपने छोटे भाई के हक को छीन रहा था, उसकी स्वतन्त्रता और सम्पत्ति को हड़प रहा था। राजकुमार पर भय छा गया। वह अपने बचाव के लिए चेटक राजा के पास पहुँच गया, शरणागत के रूप में। कूणिक को जब यह मालूम हुआ कि वह वैशाली में चेटक राजा के पास पहुँच गया है, तो उसने चेटक राजा को यह कहलवाया कि—"तुम उसको यों का यों वापस लौटाओ, अन्यथा, इसके लिए तुम्हें युद्ध का परिणाम भोगना पड़ेगा।" राजा चेटक ने शरणागत की रक्षा में युद्ध का वरण किया। भयंकर युद्ध हुआ, लाखों ही वीर काल के गाल में पहुँच गए। स्वयं चेटक नरेश भी वीरगति को प्राप्त हुए। अब प्रश्न है एक शरणागत की रक्षा का। अगर राजा चेटक उस एक शरणागत को लौटा देता, भले ही उसके साथ कुछ भी करता क्रुद्ध कूणिक, तो लाखों ही लोगों के प्राणों की रक्षा हो जाती। यदि राजा चेटक-हिंसा अहिंसा का वह विश्लेषण करता, जैसा कि आजकल कुछ लोग अपने मस्तिष्क में इस प्रकार की विचार-धारा रखते हैं, तो उसके मुताबिक वह अवश्य ही राजकुमार को वापस लौटा देता। कह देता कि—"भाई, तू यहाँ चला तो आया है। लेकिन तेरी रक्षा कैसे कर सकता हूँ? तेरी एक की रक्षा में, लाखों आदमी युद्ध में मारे जाएँगे। एक के बचाने में लाखों आदमी मारे जाने

पर तो बहुत बड़ी हिंसा हो जाएगी।" परन्तु राजा चेटक ने ऐसा कुछ नहीं सोचा, ऐसा कुछ नहीं कहा। उसने शरणागत की रक्षा के लिए युद्ध किया, जो महाभारत जैसा ही एक भयंकर युद्ध था।

अब सवाल यह है कि राजा चेटक बारह व्रती श्रावक है, उसका हिंसा-अहिंसा से सम्बन्धित चिंतन काफी सूक्ष्म रहा है, प्रभु महावीर की वाणी सुनने का कितनी ही बार उसको सौभाग्य प्राप्त हुआ है। वह कोई साधारण नरेश नहीं है, तत्कालीन वैशाली के विशाल गणतन्त्र का चुना गया अध्यक्ष है। इसका अर्थ है कि वे अपने युग के एक महान् चिन्तनशील व्यक्ति थे। उन्होंने हिंसा-अहिंसा के प्रश्न को व्यक्तियों की संख्या पर हल नहीं किया। उन्होंने अपने धर्म-चिन्तन के प्रकाश में स्पष्ट देखा कि यह शरणागत है, साथ ही निरपराध है, उसका कोई अपराध नहीं है, और उस निरपराध के हक को छीन रहा है मदान्ध कूणिक। अतः यह एक शरणागत का प्रश्न ही नहीं है, अपितु निरपराध के उत्पीड़न का भी प्रश्न है। और इस तरह से शरण में आये को, पीड़ित जन को यदि कोई वापिस लौटा दे, ठुकरा दे तो उसे कहाँ आश्रय मिलेगा ? कल्पना कीजिए, एक इंसान चारों तरफ से घिर जाता है, सब ओर से मौत आ घेरती है, भयंकर निराशा के क्षण होते हैं। उक्त निराशा के क्षणों में वह एक बड़ी शक्ति के पास पहुँचता है कि उसे शरण मिलेगी। लेकिन वहाँ उसे ठुकरा दिया जाता है, फिर दूसरी जगह जाता है, वहाँ से भी ठुकरा दिया जाता है। अब कल्पना कीजिए, उसको कितनी पीड़ा हो सकती है ! उस समय उसका मन कितना हताश हो जाता है। आँखों से आँसू बह रहे हैं, पर कोई पूछने वाला नहीं कि क्या बात है, क्यों रोता है ? स्पष्ट है, इस स्थिति में दुनियाँ में न्याय का कोई प्रश्न ही नहीं रहा, किसी पीड़ित की रक्षार्थ करुणा और दया का कोई सवाल ही नहीं रहा। तो, इस तरह पीड़ित एवं अत्याचार से त्रस्त लोगों को समर्थ व्यक्ति भी धक्के देते रहें तो आपके इस अहिंसा और दयाधर्म का, इस धर्म और कर्म काण्ड का क्या महत्त्व रह जाता है ?

अभिप्राय यह है कि यह जीवन का एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। यह एक का या हजार का सवाल नहीं है। यह एक व्यक्ति की

हिंसा या दासता का सवाल भी नहीं है, बल्कि यह आदर्शों का सवाल है। यदि एक ओर एक उच्च आदर्श की हत्या होती है, दूसरी ओर आप हजार-लाख प्राणी बचा भी लेते हैं, तो उनका कोई मूल्य नहीं रहता है। क्योंकि आदर्श की हत्या सबसे बड़ी हत्या है। यदि आदर्श की हत्या हो जाती है, तो हजारों-लाखों वर्षों तक वह एक उदाहरण बनता चला जाता है अन्याय और अत्याचार का। और इस प्रकार के उदाहरण यदि संसार में बढ़ जाएँ, तो फिर तो संसार की कोई स्थिति ही नहीं रहेगी।

वैशाली के उपर्युक्त युद्ध की एक बात विचारणीय यह है कि चेटक और कूणिक दोनों युद्ध करते हैं। दोनों ओर से हिंसा होती है, भयङ्कर नरसंहार होता है, लेकिन राजा चेटक भयंकर युद्ध में वीर गति प्राप्त करता है और मरकर स्वर्ग में जाता है। और राजा कूणिक विजेता होने के बावजूद भी जब मरता है, तो कहाँ जाता है? नरक में। क्या बात है कि एक ही चीज के दो विभिन्न परिणाम होते हैं। एक युद्ध लड़ा गया, लेकिन दो परस्पर विरोधी नतीजे कैसे आये? दोनों ने भरपूर हिस्सा लिया युद्ध में—दोनों बराबर के साझीदार हैं युद्ध के। और जब दोनों साझीदार हैं युद्ध के, तो फिर परिणाम भिन्न-भिन्न कैसे आ गए? नतीजे अलग-अलग कैसे आए? तो स्पष्ट है कि ये जो भिन्न-भिन्न नतीजे आये हैं, ये आए हैं हिंसा और अहिंसा के विश्लेषण के आधार पर। अभिप्राय यह है कि शरणागत की रक्षा करना धर्म है। क्योंकि वह भय से त्रस्त होता है, अन्याय से आक्रान्त होता है, मौत उसके सिर पर बुरी तरह मँड़रा रही होती है। वह किसी के पास रक्षा पाने के लिए आता है अब बात यह है कि उसकी रक्षा करना क्या है? एक आदर्श की रक्षा करना है, एक नैतिक पक्ष का समर्थन करना है। जो पीड़ित है, भय से त्रस्त है, दुःखित है, निरपराध है, बेचारे ने कोई दोष किया नहीं है, उसको आश्रय देना आवश्यक है। हमारी भारतीय परम्परा का यह आदर्श है बहुत बड़ा। और भारतीय परम्परा ही क्यों, सारी मानवता का आदर्श है यह। आप जिसे मानवता कहते हैं, जिसे इंसानियत कहते हैं, यह उसका आदर्श है। तो, राजा चेटक ने इस आदर्श की रक्षा की, इसलिए वह स्वर्ग में गया। और कूणिक जो लड़ा, वह लड़ा किसके लिए? अपने स्वार्थ के लिए, अपने अहंकार के लिए और

अन्याय-अत्याचार के द्वारा अपने भाई का हक छीनकर उसे बर्बाद करने के लिए, एक सर्वथा निकृष्ट आधार पर लड़ा है। अतः वह जैन शास्त्रानुसार नरक में जाता है। प्रश्न है दोनों में से धर्मयुद्ध किसने लड़ा ? राजा चेटक ने धर्मयुद्ध लड़ा। इसलिए वह स्वर्ग में गया है। और कूणिक ने भी युद्ध को लड़ा, लेकिन वह अधर्मयुद्ध लड़ने के कारण नरक में गया है। यह बात यदि आपके ध्यान में स्पष्ट हो जाती है, तो विचार कीजिए कि हिंसा और अहिंसा के प्रश्न केवल बाहर में नहीं सुलझाए जाते हैं, वे सुलझाये जाते हैं अन्दर में, अन्दर के चिन्तन में। प्रवृत्ति का मूल वृत्ति में है, अतः वृत्ति में ही हिंसा-अहिंसा का विश्लेषण होना चाहिए।

शरणागत रक्षा : आज के सन्दर्भ में :

जैसा कि आपने ऊपर राजा चेटक की शरणागतवत्सलता की बात देखी है, आज भी वह बात ज्यों की त्यों है आपके समक्ष। और तब तो केवल एक शरणागत का सवाल था और अब तो एक करोड़ के लगभग प्रताड़ित, अतएव विस्थापित बंगाली शरणार्थियों का सवाल है। विचार कीजिए, इन शरणार्थियों में माताएँ भी हैं, बहनें भी हैं, बुड्ढे भी हैं, बच्चे भी है, बच्चियाँ भी हैं, नौजवान भी हैं। क्रूर पाकिस्तानी सैनिकों द्वारा भयंकर मौत उन सबके सिर पर मँड़रा रही है, और सिर्फ मौत ही नहीं, उनके नैतिक आदर्शों की भी हत्या हो रही है। मानवता को लजा देने वाले दुराचार हो रहे हैं, विभिन्न प्रकार के पापाचार हो रहे हैं। उन्हें एक पशु के समान भी नहीं समझा जा रहा है। यदि कोई पशु को मारता है, तो थोड़ी-बहुत दया तब भी रखी ही जाती है। पशुहत्या के सम्बन्ध में भी कुछ नियम हैं कि उनका क्रूरतापूर्ण बध नहीं होना चाहिए। लेकिन इन विस्थापितों के प्रति तो इतनी निर्दयता की गई कि घर-बार सब कुछ छोड़कर वे यहाँ आए। क्यों आए ? स्पष्ट है, भयत्रस्त व्यक्ति जाएगा कहाँ ? वहीं तो जाएगा, जहाँ उसे शरण पाने का भरोसा होगा ! कुछ लोग कहते हैं कि भारत सरकार ने, प्रधान मन्त्री इन्दराजी ने गलती की, जो इन सबको अपने यहाँ रख लिया। न रखते, न झगड़ा होता और न युद्ध की नौबत आती। बेकार का

सिरदर्द मोल ले लिया। मैं पूछता हूँ, बंगाल के विस्थापित यहाँ भारत में कैसे आए ? पीछे से उन पर गोली चलाई जा रही थी। अतः प्राण-रक्षा के लिए भारत के द्वार पर आए। और किसी तरह से तो वे रुक नहीं सकते थे। यदि इधर से भी बन्दूक तान दी जाती कि खबरदार इधर आए तो। पीछे लौटो, नहीं तो गोली मार दी जाएगी ! विचार कीजिए, ऐसी स्थिति में, जब कि पीछे से गोली चल रही हो ओर आगे से भी गोली चलने लगे, तो बेचारा शरणागत कहाँ जाए ? क्या करे ? ऐसी स्थिति में आपका धर्म क्या कहता है ? आपकी मानवता क्या कहती है ?

भारतवर्ष की संस्कृति और सभ्यता को आदिकाल से ही अपने इस शरणागत रक्षा के धर्म पर गौरव है। इसी पर हिन्दू धर्म को गौरव है, जैन धर्म को गौरव है और जितने भी अन्य धर्म हैं—सबको गौरव है। और, जिसके सम्बन्ध में हम सब लाखों वर्षों से बड़े-बड़े गर्वीले नारे लगाते आ रहे हैं तो, क्या अब वर्तमान स्थिति में भारत अपने उस शरणागत रक्षा के पवित्र धर्म को तिलांजलि दे दे ? नहीं, यह नहीं हो सकता। हिंसा और अहिंसा की गलत धारणाओं के चक्र में उलझकर जो धर्म बंगला देश की प्रस्तुत समस्या से अपने को तटस्थ रखने की बात करते हैं, तो मैं पूछता हूँ, वे धर्म हैं, तो किसलिए हैं ? उनका मानवीय मूल्य क्या है ? क्या उनका मूल्य केवल यही है कि कीड़े-मकोड़ों को बचाओ, छापे-तिलक लगाओ, मंदिर में घण्टा बजाओ, भजन-पूजन करो। यह सब तो साधना के बाह्यरूप भर हैं। यदि मूल में मानवता नहीं है तो यह सब मात्र एक पाखण्ड बनकर रह जाता है। सच्चा धर्म मानवता को विस्मृत नहीं कर सकता। कौन धर्म ऐसा कहता है कि द्वार पर आने वाले उत्पीड़ित शरणार्थियों का दायित्व न लिया जाए ? उन्हें आश्रय न दिया जाए ? कहा है कि एक व्यक्ति जो कि किसी को पीड़ित कर रहा है, वह तो पाप कर रहा है। लेकिन पीड़ित व्यक्ति अपनी प्राण रक्षा के लिए बहुत बड़े भरोसे के भाव से किसी के पास शरण लेने के लिए आए और यदि वह उस शरणागत की रक्षा के लिए प्रयत्नशील नहीं होता है, तो वह उस उत्पीड़क से भी बड़ा पापी है, जिसने कि अत्याचार करके उसको मार भगाया है। एक त्रस्त व्यक्ति विश्वास लेकर आपके पास आया है कि यहाँ उसकी सुरक्षा होगी और उसी विश्वास का आपकी ओर से यदि

घात हो जाए, तो कल्पना कीजिए, उसकी कितनी भयावह स्थिति होती है ! समर्थ होते हुए भी आपने उसके लिए कुछ किया नहीं, उलटा उसे धक्का दे दिया, तो यह एक प्रकार का विश्वासघात ही तो हुआ। और विश्वासघात बहुत बड़ा पाप है। किसी को अभय देना, एक महान धर्म है और अभय देने से किसी भयाक्रान्त को इन्कार कर देना, बहुत बड़ा अधर्म है। बंगला देश के एक करोड़ के लगभग पीड़ित विस्थापितों को अभय देकर भारत ने वह महान् सत्कर्म किया है, जो विश्व इतिहास में अजर अमर रहेगा।

यह बहुत बड़ी दैवी कृपा हुई कि बंगला देश के पीड़ितों ने आपके ऊपर भरोसा किया। और, यह जानी हुई बात है कि भरोसा किसी साधारण व्यक्ति पर नहीं किया जाता। पास में अन्य देश भी थे, लेकिन वहाँ पर कोई नहीं गया, सभी भारत में ही आए। क्यों आए ? इसका तात्पर्य यह है कि इसका गौरव उन्होंने एकमात्र आपको दिया। उनको भरोसा था कि यहाँ भारत में उनकी ठीक-ठीक रक्षा होगी। और इतना बड़ा विश्वास लेकर कोई जनता आए और फिर उसे आप ठुकरा दें, धक्का दे दें, तो यह कितना बड़ा पाप है ? आप भाग्यशाली थे कि आप से यह पाप न हुआ। भारत की सांस्कृतिक परम्परा का उज्ज्वल गौरव आपके हाथों में सुरक्षित रहा। आप वैयक्तिक तुच्छ स्वार्थों के अन्धकार में नहीं भटके। बहुत बड़ा दायित्व अपने ऊपर लिया और उसे प्रसन्नता से निभाया।

अभिप्राय यह है कि ऐसा समय इतिहास में कभी-कभी ही आता है। जैसा कि मैंने बताया, चेटक ने तो एक शरणागत की रक्षा के लिए इतना बड़ा भयंकर युद्ध किया। हिंसा हुई, फिर भी भगवान् महावीर कहते हैं कि वह स्वर्ग में गया और आपने तो लाखों-करोड़ों इन्सानों की रक्षा की है, और इसी कारण आपको यह युद्ध भी करना पड़ा है, अन्यथा आपके सामने तो युद्ध का कोई सवाल ही नहीं था। भारत की प्रधान मन्त्री श्रीमती इन्दिरागान्धी, समूची राष्ट्र शक्ति को साथ लिए आज जो जूझ रही हैं, उसके मूल में उन्हीं पावन भारतीय आदर्शों की रक्षा का प्रश्न है। कहना तो यों चाहिए कि ढाई हजार वर्ष बाद इतिहास ने अपने आपको दुहराया है। यानी भ० महावीर के युग की वह घटना आज फिर से दुहराई जा रही है और यदि महावीर आज धरती पर होते तो क्या निर्णय देते इस सम्बन्ध

में ? प्रभु महावीर आज धरती पर निर्णय देने को नहीं हैं, तो क्या बात है ? उनका जो निर्णय है, वह हमारे सामने है। आज जो फैसला लेना है, उनके द्वारा, वह फैसला पहले ही दिया जा चुका है। इसका अर्थ यह है कि वर्तमान के नये जजों के फैसले में अतीत के पुराने जजों के फैसले निर्णायक होते हैं। अभिप्राय यह है कि भ० महावीर ने जो फैसला दिया था, कि राजा चेटक स्वर्ग में गया और कूणिक नरक में—बिलकुल स्पष्ट है कि यदि आज के इस संघर्ष को लेकर इंदिराजी के सम्बन्ध में पूछें तो प्रभु महावीर का वही उत्तर है, जो वे ढाई हजार वर्ष पहले ही दे चुके हैं। तात्पर्य यह है कि यह युद्ध शरणागतों की रक्षा का युद्ध है, अतः भारतीय चिन्तन की भाषा में धर्मयुद्ध है और धर्मयुद्ध अन्ततः योद्धा के लिए स्वर्ग के द्वार खोलना है—'स्वर्ग द्वारमपावृतम्'। यह वह केन्द्र है, जहाँ भारत के प्रायः सभी तत्त्वदर्शन और धर्म एकमत हैं।

मैं यह जो विश्लेषण कर रहा हूँ, क्यों कर रहा हूँ ? इसका कारण यह है कि अहिंसा-हिंसा के विश्लेषण का दायित्व जैन समाज के ऊपर ज्यादा है, चूँकि जैन परम्परा का मूलाधार ही अहिंसा है। भ० महावीर ने अपने तत्त्वदर्शन में हिंसा और अहिंसा का विश्लेषण किस आधार पर किया है ? भगवान् के अहिंसा दर्शन की आधारशिला कर्त्ता की भावना है। बात यह है कि ये जो युद्ध होते हैं, हिंसाएँ होती हैं, आदमी मरते हैं, इन सबको गिनने का कोई सवाल नहीं है। सवाल तो सिर्फ यह है कि आप जो युद्ध कर रहे हैं, वह किस उद्देश्य से कर रहे हैं। आपके संकल्प क्या हैं ? आपके भाव क्या हैं ? आपका आन्तरिक परिणमन क्या है ? राम युद्ध करते हैं रावण से। राम का क्या संकल्प है ? नारी जाति पर होने वाले अत्याचारों का प्रतिकार करना ही तो ! राम के समक्ष एक सीता का ही सवाल नहीं है अपितु हजारों पीड़ित सीताओं के उद्धार का सवाल है। राम एक आदर्श के लिए लड़ते हैं। और रावण जो युद्ध कर रहा है, उसका क्या संकल्प है ? उसका संकल्प है वासना का, दुराचार का। पांडव युद्ध कर रहे हैं श्रीकृष्ण के नेतृत्व में किसलिए ? केवल अपने न्यायप्राप्त अधिकार के लिए। दूसरी ओर दुर्योधन भी युद्ध कर रहा है। किन्तु वह किस संकल्प से कर रहा है ? पाण्डवों के न्याय प्राप्त अधिकारों को हड़पने के लिए। ये सारी चीजें विचार करके

यदि आप देखेंगे तो इन सबका निर्णय अन्तर्जगत् के अन्दर जाकर हो जाता है। अन्तर्जगत् के अन्दर क्या परिणमन है, यह है विचारणीय प्रश्न ! जैसा कि मैंने पहले बताया है कि कभी द्रव्य हिंसा होती है, भावहिंसा नहीं होती। कभी भावहिंसा होती है, द्रव्य हिंसा नहीं होती। कभी दोनों ही होती हैं। उक्त चर्चा में भाव हिंसा ही वस्तुतः हिंसा का मूलाधार है। और भावहिंसा में भी हमें यह देखना पड़ेगा कि बड़ी हिंसा को रोकने के लिए, जो छोटी हिंसा कर रहे हैं, वह आवश्यक है या अनावश्यक ? स्पष्ट है कि जीवन में कुछ प्रसंग ऐसे आते हैं कि यह बिलकुल आवश्यक हो जाती है। बहुत बड़े अत्याचार, अनाचार, दुराचार, अन्याय एवं अधर्म को रोकने के लिए विचारकों को छोटी हिंसा का आश्रय लेना ही होता है। समाज और राष्ट्र के प्रश्न का समाधान यों ही बेतुकी बातों से कभी नहीं होता है।

हिंसा केवल शरीर की ही हिंसा तो नहीं है। मन की हिंसा भी बहुत बड़ी हिंसा होती है। विचार कीजिए कि जब देश गुलाम हो जाए और जनता पराधीनता के नीचे दब जाए, तो ऐसी स्थिति में उसके शरीर को हिंसा ही नहीं, सबसे बड़ी मन की हिंसा भी होती है। पराधीन जनता का मानसिक स्तर, बौद्धिक स्तर, जीवन के उदात्त आदर्श, गुलामी के अन्दर इस तरह से पिस-पिसकर खत्म हो जाते हैं, नष्ट हो जाते हैं कि वह केवल एक मृत ढाँचा भर रह जाता है। पराधीन राष्ट्र के धर्मों, परम्पराओं एवं संस्कृतियों के अन्दर से प्राण निकल जाते हैं, और वे केवल सड़ती हुई लाश भर रह जाते हैं। भारत यह सब देख चुका है।

गाँधी युग फिर दुहराया है :

सभी जानते हैं कि जब विदेशी आक्रमणकारियों के द्वारा भारत पर आक्रमण हुआ, तब देश कितना पददलित हुआ था। कितने निम्न स्तर पर चला गया था और किस प्रकार हमारी नैतिक चेतना शमित हो गई थी ! यह जो फिर से दोबारा जान आई है देश के अन्दर। आप सबको मालूम है, यह गाँधीजी द्वारा आई है। अन्याय-अत्याचार का प्रतिकार करने के लिए आवाज उठी, जनता में नई

प्रेरणाएँ जगीं, अहिंसा एवं सत्य के माध्यम से स्वतन्त्रता का युद्ध लड़ा गया और विश्व की एक बहुत बड़ी शक्ति—ब्रिटिश साम्राज्य को पराजित कर राष्ट्र स्वतन्त्र हुआ। और सौभाग्य की बात है कि स्वतन्त्रता का युद्ध लड़ने वाला सेनापति अपने युग का एक महान् अहिंसावादी था। वह अहिंसावादी था और अहिंसा के मूल अर्थ को समझता था। वह अहिंसा के प्रचलित सीमित अर्थ तक ही नहीं रुका हुआ था, बल्कि वह अहिंसा को भूत, भविष्य, वर्तमान के व्यापक धरातल पर परखता था।

अहिंसा के विस्तृत आयाम पर गांधीजी की दृष्टि थी। यही कारण है कि जब काश्मीर पर प्रथम पाकिस्तानी आक्रमण हुआ, तो उनसे पूछा गया कि काश्मीर की रक्षा के लिए सेनाएँ भेजी जाएँ या नहीं ? तो उन्होंने यह नहीं कहा कि सेना न भेजो, यह हिंसा है, यदि कुछ करना है तो वहाँ जाकर सत्याग्रह करो। ऐसा क्यों नहीं कहा उन्होंने ? इसलिए कि सत्याग्रह सभ्य पक्ष के लिए होता है। विरोधी भले ही हो, किन्तु सभ्य विरोधी सत्याग्रह जैसे सात्विक प्रयासों से प्रभावित होता है। परन्तु जो असभ्य बर्बर होते हैं, उनके लिए सत्याग्रह का कोई मूल्य नहीं होता। खूंख्वार भेड़ियों के सामने सत्याग्रह क्या अर्थ रखता है ? ब्रिटिश जगत् कुछ और था, जिसके सामने सत्याग्रह किया गया था। वह फिर भी एक महान् सभ्य जाति थी ! किन्तु याह्याखाँ और उसके पागल सैनिकों के समक्ष कोई सत्याग्रह करे, तो उसका क्या मूल्य हो ? याह्याखाँ का क्रूर सैनिक दल बाँगला देश में मासूम बच्चों का कत्ल करता है, महिलाओं के साथ खुली सड़कों तक पर बलात्कार करता है, गाँव के गाँव जलाकर राख कर डालता है, हर तरफ निरपराध बच्चे, बूढ़े, नौजवान और स्त्रियों की लाशें बिछा देता है, इसका मतलब यह कि वह युद्ध नहीं लड़ रहा है। वह तो हिंसक पशु से भी गई-बीती स्थिति पर उतर आया है। प्रश्न है, इस अन्याय के प्रतिकार के लिए क्या किया जाए ? अहिंसा की दृष्टि से विचार करें तो क्या होना चाहिए ? युद्ध या और कुछ ? क्रूर दरिंदों के समक्ष और कुछ का तो कुछ अर्थ ही नहीं रह गया है। युद्ध ही एक विकल्प रह गया है, जो चल रहा है। यह आक्रमण नहीं, प्रत्याक्रमण है। और, जैसा कि चेटक और कूणिक का उदाहरण आपके सामने

रखा कि चेटक युद्ध करके स्वर्ग में गया है, चूँकि उसने शरणागत की रक्षा के लिए आक्रमणकारी से धर्मयुद्ध लड़ा था, और कूणिक युद्ध करके नरक में गया है, चूँकि उसने न्यायनीति को तिलांजलि देकर अधर्मयुद्ध लड़ा था। आज आपके सामने ठीक वही प्रश्न यथावत है कि आप भी शरणागतों की रक्षा के प्रश्न पर युद्ध के लिए ललकारे गये हैं, युद्ध करने को विवश किये गये हैं। प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने बड़े धैर्य से काम लिया है, करोड़ों विस्थापितों का वह भार उठाया है, जो देश के अर्थतन्त्र को चकनाचूर कर देता है। आठ-आठ महीने प्रतीक्षा की है कुछ सुधार हो जाए, विश्व के प्रमुख राष्ट्रों को जा-जाकर सही स्थिति समझाई है। परन्तु जब कुछ भी परिणाम नहीं आया और पाकिस्तान की दुःसाहसी सैनिक टोली ने रणभेरी बजा ही दी, तो इन्दिराजी ने भी उत्तर में रण दुन्दुभी बजा दी है, भारत के नौजवान सीमा पर जूझ रहे हैं। युद्ध हो रहा है। भारतीय तत्त्वचिन्तन के आधार पर यह धर्मयुद्ध है और अंततः विजय धर्मयुद्ध की ही होती है। **"यतो धर्मस्ततो जयः"**—जहाँ धर्म है, वहीं विजय है। **'सत्यमेव जयते, नानृतम्'** सचाई की ही विजय होती है, झूठ की नहीं।

★

विशेष :

जैसा कि आरंभ में इस निबंध की संपादकीय टिप्पणी में बताया है कि श्रद्धेय कविश्रीजी का यह प्रवचन ६-१२-७१ को ६ बजे हुआ था। और उसी दिन संसद में श्रीमती इंदिरा गांधी ने ऐतिहासिक निर्णय के रूप में भारत द्वारा "बांगला देश की मान्यता" की ऐतिहासिक घोषणा की थी।

आज स्थिति बहुत कुछ बदल चुकी है। बांगला देश स्वतंत्र हो चुका है। युद्ध दोनों ओर से थम चुका है। हम नवोदित धर्म निरपेक्ष राष्ट्र बांगला देश की सर्वतोमुखी उन्नति की हार्दिक कामना करते हैं। और समय पर सर्वथा उचित निर्णय लेने के लिए प्रधान मंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधीजी का अभिनन्दन करते हैं, साथ ही देश के बहादुर जवानों पर गर्व करते हैं, जिन्होंने सत्य एवं न्याय की विजय के लिए संघर्ष किया। —कलाकुमार

वी रा य त न

एक समीक्षा : एक चिन्तन

वीरायतन क्या है ?

'वीर' और 'आयतन'—इन दो शब्दों से वीरायतन एक शब्द बना है। इसमें 'वीर', भगवान् महावीर का नाम है और शब्द कोश (प्राचीन आगम साहित्य में 'सिद्धायतन' भी ऐसा ही एक शब्द प्रयोग है) की दृष्टि से आयतन का अभिधाजन्य अर्थ है—पवित्र स्थान। मिलकर अर्थ हुआ—भगवान् महावीर का पवित्र स्थान, उनकी पुण्यभूमि। वीरायतन का अन्तर्निहित लाक्षणिक अर्थ है—निर्वाण शताब्दी के अवसर पर भगवान् महावीर की पुण्य स्मृति में हमारी श्रद्धा का प्रतीकात्मक एक आदर्श ज्योति केन्द्र, जो धर्म, संस्कृति, समाज और राष्ट्र एवं विश्व की समस्याओं के समाधान में भगवान् महावीर के जीवनदर्शन के आलोक में यथोचित योग-दान दे सके। विकासपथ पर, जैसा कि शासनभक्तों का स्वप्न है, यदि यह बढ़ता जाए, यदि को निकाल दीजिए, विश्वास है, बढ़ता ही जाएगा तो एक दिन वीरायतन का पांडीचेरी, शांति-निकेतन, हिन्दू यूनिवर्सिटी, शारदाग्राम आदि की भाँति ही विशिष्ट महत्त्व होगा। वीरायतन निर्वाण शताब्दी की एक ऐसी चिर-स्मरणीय ऐतिहासिक उपलब्धि होगी, जो भविष्य की अनेक शताब्दियों तक जन-जीवन को ज्योतिर्मय कर सकेगी और वीर शासन का गौरव जन-जन के मन में निष्ठा के साथ प्रतिष्ठित कर सकेगी।

विज्ञान की नई स्थापनाओं की छाया में प्राचीन गौरवमयी अनेक धारणाएँ धूमिल होती जा रही हैं। पुरातन परम्पराओं का

मूल्य गिर रहा है। निर्माणकारी नवीन परम्पराओं का निर्माण नहीं हो रहा है। अहिंसक समाज-रचना के परिवेश में, प्राचीन मौलिक संस्कृति की भावना को ध्यान में रखते हुए युगानुसारी चिन्तन के आलोक मे, जीवन के समस्त पहलुओं को स्पर्श करने वाली विचार पद्धति के आधार पर वीरायतन का कार्य होगा।

वीरायतन का उद्देश्य क्या है ?

आध्यात्मिक जगत् के महान् सूर्य भगवान् महावीर के दिव्य जीवनदर्शन को व्यक्ति-व्यक्ति तक पहुँचाना, इसका प्रथम उद्देश्य है। इसके लिए आध्यात्मिक परिवेश में स्वस्थ एवं रचनात्मक जीवन के विकास की व्यवस्था वीरायतन देगा प्रायोगिक जीवन शिक्षण का प्रबन्ध करेगा।

शिक्षा के क्षेत्र में वीरायतन की योजना में प्राथमिक स्कूल से लेकर विश्व विद्यालय तक का संकल्प है। सार्वजनिक क्षेत्र में आरोग्य-केन्द्र, कला केन्द्र, उद्योग केन्द्र आदि की रूपरेखा है।

साधना के क्षेत्र में स्वाध्याय मन्दिर, आगम मन्दिर, आगम प्रकाशन, साधना केन्द्र, नयी और पुरानी दोनों शैलियों के आधार पर ध्यान योग का प्रशिक्षण, सुरुचिपूर्ण जीवनस्पर्शी साहित्य का प्रचार-प्रसार, नैतिक शिक्षण, समाज के सभी वर्गों में से सभी प्रकार के दुर्व्यसनों की मुक्ति आदि अनेक शाखाएँ हैं। समय और परि-स्थितियों ने ठीक तरह साथ दिया तो कार्यकर्त्ता बहुत कुछ करना चाहते हैं।

वीरायतन राजगृही में ही क्यों ?

स्थान की दृष्टि से समाज के प्रबुद्ध विचारकों को अभी तक राजगृही ही मुख्य केन्द्र के रूप में (भविष्य में शाखा केन्द्र अन्यत्र भी हो सकते हैं) पसन्द है। राजगृही को भगवान् महावीर के १४ वर्षावास होने का ऐतिहासिक सुअवसर मिला है। प्रभु के पावन चरण स्पर्श से वह पुण्यभूमि गौरवान्वित रही है। प्रभु की दिव्य-वाणी वहाँ से मुखरित होकर दूर-दूर तक पृथ्वी के अनेक देशों तक पहुँची है। अतीत में जिस नगर के हजारों-लाखों नर-नारियों को प्रभु के संघ को, समवसरण को देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। धन

कुवेर धन्ना और शालिभद्र जैसे तरुण राजगृह में ही प्रभु चरणों में दीक्षित हुए हैं। तत्कालीन मगध और विदेह का विहार प्रान्त ही प्रभु महावीर की जन्मभूमि, तपोभूमि, धर्मप्रचार भूमि और निर्वाण भूमि है। अतः भगवान् महावीर की पच्चीसवीं निर्वाण शताब्दी पर, जनहित की मंगल दिशा में, कुछ निर्माण-कार्य करने के लिए हमारी ऐतिहासिक चेतना, समाज के प्रबुद्ध विचारशील वर्ग को राजगृही का चुनाव करने को बाध्य करती है।

दूसरी बात राजगृही को और भी अनेक कारणों से महत्त्व प्राप्त है। सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक महत्त्व तो इसका है ही साथ ही विपुलाचल और वैभारगिरि आदि पर्वत माला के कारण प्राकृतिक महत्त्व भी उतना ही है। जो योजना है उसके लिए राजगृही का वातावरण बहुत उपयुक्त रहेगा। एक और महत्त्वपूर्ण बात है—राजगृही के विषय में प्रायः सभी को समान रूप से आस्था है। वह अन्तर्देशीय केन्द्र रहेगा, क्षेत्रीय दृष्टि से सीमित नहीं होगा।

विहार, बंगाल, और पूर्वी उत्तर प्रदेश आदि की सर्व साधारण जनता में अब भी भगवान् महावीर के प्रति हार्दिक भक्ति है, श्रद्धा है। विहार की शिक्षित जनता तो भगवान् महावीर पर विहारी होने के नाते गौरवानुभूति करती है। यदि समाज वीरायतन के रूप में अपने संकल्पों को ठीक योजनाबद्ध पद्धति से मूर्तरूप दे सके तो विहार में, और उसके पड़ोसी बंग, उत्कल (उड़ीसा) और असम में भगवान् महावीर के नैतिक आदर्शों को पुनरुज्जीवित किया जा सकता है। श्रद्धेय कविश्रीजी के द्वारा अपने राजगृही के चातुर्मास-काल में तथा विहार यात्रा में ऐसा कुछ हुआ भी था। पुनः संपर्क के अभाव में इस प्रकार की विचार ज्योति फिर धुँधली हो जाती है। वीरायतन के द्वारा यह समस्या समाधान पा सकती है। और यदि निरंतर विकास होता रहा, तो आगे चलकर, भविष्य में संभव है, यह राजगृह का संस्थान समग्र समाज का एक महान् प्रतिनिधि संस्थान ही हो जाए।

वीरायतन की कौनसी धाराएँ हैं ?

वीरायतम की मुख्य २१ कर्म-धाराएँ हैं। चिन्तन चल रहा है। स्वप्न लम्बे देखे जा रहे हैं। समाज में यदि कोई नया विभ्रम न

खड़ा हुआ, और मुक्त सहयोग मिलता रहा, तो बहुत कुछ करने के संकल्प हैं।

(१) प्राथमिक पाठशाला
(२) स्कूल लड़कों के लिए
(३) स्कूल लड़कियों के लिए
(४) कॉलेज लड़कों के लिए
(५) कॉलेज लड़कियों के लिए
(६) छात्रावास लड़कों के लिए
(७) छात्रावास लड़कियों के लिए
(८) प्राकृत यूनिवर्सिटी
(९) साधना केन्द्र
(१०) स्वाध्याय मंदिर (पुस्तकालय)
(११) आगम प्रकाशन
(१२) जीवनोपयोगी सुगम साहित्य प्रकाशन केन्द्र
(१३) शोध संस्थान
(१४) आगम मंदिर
(१५) पुरातत्त्व संग्रहालय
(१६) निवृत्ति आश्रम
(१७) धर्म परम्पराओं का तुलनात्मक अध्ययन
(१८) गोसदन (मूक प्राणिरक्षा केन्द्र)
(१९) उद्योग केन्द्र
(२०) कला केन्द्र
(२१) चिकित्सालय (हॉस्पीटल)

कार्य-विस्तार के साथ संस्था को और भी विकसित किया जा सकेगा। उपरिनिर्दिष्ट कार्यक्रम में समयानुसार उचित संशोधन भी संभव है।

स्कूल, कॉलेज या छात्रावास आदि अब तक के घिसे-पिटे पुराने संस्करण नहीं होंगे, अपितु पुराने और नये के संगम पर कुछ नया ही सृजनात्मक रूप लेंगे। वर्तमान शिक्षण पद्धति के दोषों से बचकर एक सचेतन सांस्कृतिक चेतना जगाना ही उक्त शिक्षण संस्थाओं का मूल उद्देश्य होगा। इसके लिए समय पर देश के मूर्द्धन्य शिक्षा शास्त्रियों से संपर्क साधा जाएगा।

वीरायतन के लिए किन लोगों का सहयोग अपेक्षित है ?

वीरायतन के लिए समग्र जनता का सहयोग अपेक्षित है। मानवतावादी महान् आत्माएँ किसी परम्पराविशेष में बद्ध नहीं होते हैं। वे सभी के होते हैं और सब उनके होते हैं। अतः असाम्प्रदायिक भावना के साथ सार्वजनिक स्तर पर ही उनके उत्सव मनाए जाने चाहिएँ, जिससे एकात्मकता की सुरक्षा हो सके। इसी दृष्टि से प्रस्तुत निर्वाण शताब्दी पर हमें स्पष्ट हो जाना चाहिए कि भगवान् महावीर की अति मूल्यवान देशनाएँ एकमात्र जैन समाज की ही नहीं, अपितु समग्र जन समाज की हैं, क्योंकि महावीर सबके हैं। किसी एक के नहीं।

पच्चीसवीं निर्वाण शताब्दी के अवसर पर महावीर की स्मृति में "वीरायतन" के नाम से जो स्मारक खड़ा किया जा रहा है, वह भी सबके लिए है। अतः सभी की ओर से सहयोग लेना एवं देना जरूरी है। इसके लिए किसी सम्प्रदायविशेष का बन्धन नहीं है। महावीर से सम्बन्धित तत्त्वदर्शन एवं जीवन दर्शन जो भी प्राप्त करना चाहेगा, उसके लिए पूरी व्यवस्था होगी। सर्वसाधारण के लिए सेवा के द्वार मुक्त हैं, तो इसके लिए सहयोग के द्वार भी मुक्त होने चाहिएँ। सबके सहयोग से ही यह महान् कार्य यशस्वी होगा। सहयोग देने और लेने में, साम्प्रदायिक, धार्मिक, जातीय अथवा राष्ट्रीय आदि के रूप मे किसी प्रकार से कोई प्रतिबन्ध नहीं होगा।

संक्षेप में वीरायतन का कार्य सूत्र है—यह संस्था सभी की होगी, सबके लिए होगी, सभी के सहयोग से होगी।

सरकारी सहयोग लिया जा सकेगा क्या ?

सार्वजनिक धरातल पर किये जाने वाले इस प्रकार के असाम्प्रदायिक कार्यों में सरकार का सहयोग अवश्य मिल सकता है। सरकार स्वयं भी ऐसे महत्त्वपूर्ण कार्यों का विकास चाहती है। किन्तु मूल में प्रश्न जनता का है। पहले जनता स्वयं प्रारम्भ करे, उसके बाद ही सरकार के सहयोग की चर्चा हो सकती है। और वह सरकारी सहयोग भी उसी स्तर पर अपेक्षित होना चाहिए, जो

संस्थान की मूल भावना को मूर्तरूप देने के मार्ग में प्रतिबन्धक या प्रतिरोधक न हो।

साधु-साध्वियों का सहयोग इसमें क्या और कैसा हो सकता है ?

भगवान् महावीर की पुण्यस्मृति में असाम्प्रदायिक स्तर पर यह कार्य हो रहा है। अतः भगवान् महावीर के जीवन दर्शन एवं तत्त्व-दर्शन की विश्व मंगलकारी मौलिक आत्मभावना तो इसमें प्रतिबिम्बित होगी, किन्तु परस्पर में विग्रह, कलह, घृणा एवं विद्वेष बढ़ाने वाली आज कल की साम्प्रदायिक कट्टरता से सर्वथा दूर रहा जाएगा। इसलिए आज की प्रत्येक परम्परा से सम्बन्धित साधु-साध्वी अपनी मर्यादा के अनुसार इसमें भावनात्मक और विचारात्मक सहयोग दे सकते हैं। अपने पास अभ्यास करने वाले भाव-दीक्षार्थी भाई-बहनों को भी प्रचार कार्य में प्रेरणा दे सकते हैं।

वीरायतन के मूर्तरूप लेने पर राजगृही के मुख्य केन्द्र में, तथा अन्य प्रान्तीय शाखा केन्द्रों में धार्मिक, दार्शनिक, आध्यात्मिक, ध्यानयोग आदि की क्रियात्मक सजीव शिक्षण की समुचित व्यवस्था होगी, अतः साधु-साध्वी, दीक्षार्थी भाई-बहनें, तथा अन्य साधक भावना के प्रेमी योग्य लाभ ले सकेंगे।

वीरायतन का प्रचार कार्य व्यापक रूप ले सके, इसके लिए क्या करना चाहिए ?

वीरायतन के प्रचार कार्य के लिए तत्काल में प्रान्तीय, जिला, तहसील आदि के रूप में 'वीरायतन सेवा संघ' की स्थापना का विचार चल रहा है। आने वाले इन दो तीन वर्षों में लाखों सदस्य बनाने की योजना है। वीरायतन सेवा संघ के उत्साही सदस्य बनाने के लिए इन वर्षों में भारत के प्रायः सभी प्रान्तों से सम्पर्क स्थापित करने का प्रयत्न किया जाना चाहिए।

वीरायतन सेवा संघ का उद्देश्य वीरायतन की योजना को समझाना, उसके लिए सक्रिय सहयोग प्राप्त करना, सभी धर्म परम्पराओं में उचित समन्वय भावना स्थापित करना, और महावीर निर्वाण शताब्दी का वर्ष शानदार तरीके से मनाने की विराट् योजना को मूर्तरूप देने का सामूहिक प्रयत्न करना है।

इस संघ के सदस्य बिना किसी भेदभाव के सभी बन सकेंगे। प्रचार के लिए योग्य प्रचारकों को गाँव-गाँव, नगर-नगर भेजना पड़ेगा, जिससे कि आने वाले इन तीन वर्षों में धीरे-धीरे वीरायतन सम्पूर्ण राष्ट्रव्यापी आन्दोलन का रूप ले सके, साथ ही भगवान् महावीर के विश्वमंगल एवं जन कल्याणकारी धर्मसंदेशों का भी व्यापक प्रचार-प्रसार हो सके।

महावीर निर्वाण शताब्दी का वर्ष किस प्रकार मनाया जाए ?

महावीर निर्वाण शताब्दी का कार्यक्रम बन रहा है। सभी स्तर के विद्वानों एवं विचारकों से विचार विमर्श का सम्पर्क सूत्र साधा जारहा है। सम्भव है, शीघ्र ही वीरायतन सम्पूर्ण कार्यक्रम को प्रस्तुत करने की स्थिति में पहुँच सके। इस कार्यक्रम में यह ध्यान रखा जाएगा कि राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र का प्रत्येक मनुष्य भगवान् महावीर और उनकी सर्वमंगल लोककल्याणकारी अमृत-वाणी से परिचित हो जाए। इतना ही नहीं, उनके संदेशों को जीवन में ढालने का भी क्रियात्मक मार्ग प्रशस्त किया जा सके।

वीरायतन जैसी और कोई योजना है ?

जहाँ तक हमारी जानकारी है, वीरायतन जैसी कोई दूसरी योजना अभी तक प्रकाश में नहीं है। वस्तुतः अब तक के इसी अभाव के कारण ही वीरायतन योजना जनता के सामने उपस्थित हुई है।

अब तक के प्रयत्न क्षेत्रीय, रूढ़ साम्प्रदायिक तथा कार्यक्रमों के दृष्टिकोण से एकांगी एवं सीमित स्तर पर हुए हैं। व्यापक रूप से जन-भावना को छूने का प्रयत्न प्रथम तो हुआ नहीं, और यदि कुछ हुआ भी है तो वह नहीं के बराबर है। आज की विश्व जन-चेतना पुराने क्षुद्र एवं संकुचित चिन्तन स्तर से काफी ऊँचाई पर उठती जा रही है, अतः आज वे ही कर्मतन्त्र एवं प्रचारतन्त्र सफल हो सकते हैं, जो जनहित की व्यापक दृष्टि को लेकर आगे आते हैं। वीरायतन योजना का कार्यक्रम इस वैचारिक स्तर पर शत-प्रतिशत खरा उतर सकता है हम आशा करते हैं, विगत शताब्दियों से अभी तक

ऐतिहासिक दृष्टि से ऐसा कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं हुआ है, वीरायतन उस अभाव को सक्षम रूप से भावात्मक पूर्ति कर सकेगा।

कार्य-संचालन पद्धति की क्या रूपरेखा है ?

कार्य-संचालन के सम्बन्ध में काफी गहराई से सोचा जा रहा है। क्या करना है यह तो निश्चित हो गया है, परन्तु कसे करना है, यह विचारमंथन की स्थिति में है। हम चाहते हैं, वह केवल आदर्श मात्र ही न रहे, अपितु ठोस व्यावहारिक रूप ले। काट-छाँट होरही है। फिर भी ऐसा कुछ निश्चित हो रहा है कि "एक केन्द्रिय संघ होगा, जिसमें भारत के विभिन्न स्थानों क प्रमुख व्यक्ति होंगे। संस्था के संविधान के अनुसार यह संघ कार्य संचालन करेगा। वीरायतन की अन्तरंग स्थिति एवं कार्य-नीति निश्चित करने का दायित्व भी इसी संघ का होगा। संस्थाओं पर नियन्त्रण, निरीक्षण और अन्तिम निर्देशन एव आर्थिक प्रबन्ध आदि केन्द्रीय संघ के अधीन होंगे। सुविधानुसार स्वतन्त्र तदर्थ कार्यवाहक समितियाँ भी कार्य करेंगी। शीघ्र ही कार्यसंचालन पद्धति और संविधान प्रकाशित होने जा रहा है।

बीरायतन का कार्य-विभाजन क्या प्रान्तीय स्तर पर होगा ?

केन्द्रीय नियन्त्रण न होकर यदि स्वतन्त्र रूप से प्रान्तीय स्तर पर कार्य किए जाएँ तो कार्यक्रम एक दिशा में गतिशील नहीं हो सकेगा, वह व्यर्थ ही इधर-उधर बेतरतीब बिखर जाएगा। इसलिए भविष्य के लिए तो क्या कहा जा सकता है, परन्तु अभी यही कहा जा सकता है, कि वर्तमान में कार्य को स्वतन्त्र प्रान्तीय स्तर पर छितरा देने का कोई विचार नहीं है। अभी वीरायतन की २१ शाखाएँ हमारे समक्ष हैं। किसी भी क्षेत्र से कोई भी एक व्यक्ति या पार्टी अथवा संघ इन शाखाओं में से जिस शाखा को विकसित करना चाहें, कर सकेंगे, पर वह सब वीरायतन के अन्तर्गत होगा। अभी पूर्व भारत स्था० जैन गुजराती संघ ने वीरायतन की ४ शाखाओं को विकसित करने का निर्णय किया है। कलकत्ता से और भी

कार्य होने की सम्भावना है। आगरा में भी विचार-चर्चा प्रगति पर है। निकट भविष्य में सुअवसर आने पर संस्था के कार्य का विभाजन सम्पूर्ण भारत में होगा। किसी एक प्रान्तविशेष अथवा क्षेत्रविशेष से ही इसका कोई सम्बन्ध नहीं होगा। जो जितना करना चाहेगा, उसका वैसा यथोचित सहयोग लिया जाएगा। अखिल भारतीय जैन कान्फरेन्स ने सहयोग देने का आश्वासन दिया है। महाराष्ट्र में हुए नासिक सम्मेलन ने भी सहयोग का प्रस्ताव पारित किया है। पंजाब, दिल्ली हरियाना, राजस्थान, उत्तर प्रदेश आदि अनेक प्रदेशों की ओर से भी सहयोग के आश्वासन मिल रहे हैं। जनता के उत्साह में कोई कमी नहीं है। कार्यकर्त्ताओं का अभाव अवश्य खटक रहा है। अतः समस्या है सम्पर्क साधने की। इसके समाधान का भी कोई मार्ग निकलेगा ही।

प्रमुख कार्यालय कहाँ रहेगा ?

अभी वीरायतन का प्रमुख कार्यालय आगरा ही रहेगा। कलकत्ता भी उपप्रमुख कार्यालय का रूप ले रहा है, जो संस्था के विकासोन्मुख कार्य की दृष्टि से आवश्यक है। अन्यत्र भी ऐसा ही कुछ हो सकता है, पर, सबका सम्पर्क सूत्र अभी आगरा से ही सम्बद्ध रहेगा। भविष्य में राजगृही में कार्य प्रारम्भ होने के बाद केन्द्रीय कार्यालय वहीं स्थानान्तरित कर दिया जाएगा।

अभी तक का यह विचार है। आखिर में तो विधान के अनुसार केन्द्रीय संघ को ही संस्था की समग्र गतिविधि निर्धारित करनी होगी।

संयोजक, वीरायतन

भगवान् महावीर की २५ वीं शताब्दी समायोजन में .

एकता की महती आवश्यकता

विश्व उद्धारक अहिंसा के अवतार एवं सत्य के साकार रूप भगवान् महावीर की वाणी बिखरे फूलों की भाँति थी, पर गणधरों ने उन बिखरे फूलों को पद्य एवं गद्यमय रचना के रूप में एकत्र करके एक पावन हार पिरो दिया। श्रमण संस्कृति का मूल एक है, शाखाएँ चाहे जितनी भी क्यों न हों। बिखरे हुए फूलों की तरह छः भागों में जैन धर्म फैला हुआ है। आज के विषमयुग में यह आवश्यक है कि गणधरों के जैसा कोई शक्तिशाली महान् व्यक्तित्व के धारक, विशाल मेधावी, उत्कृष्ट वर्चस्वी आचार्य, उपाध्याय तथा मुनि समाज की इस विभाजित शक्ति को, श्रमण संस्कृति के मैत्री एवं सौहार्द के विशाल धागे मे एक अपूर्व हार के रूप में पिरोकर सुन्दरता प्रदान करें।

अणुव्रत आन्दोलन के प्रवर्तक युगप्रधान आचार्य श्री तुलसी ने जैन एकता की 'पंच-सूत्री' योजना प्रस्तुत की है जैसे :—

(१) सबके प्रति मण्डनात्मक नीति बरती जाये।

(२) अपनी अपनी मान्यता का प्रतिपादन किया जाए, किन्तु दूसरों पर लिखित या मौखिक रूप से आक्षेप न किया जाए।

(३) दूसरों के विचारों के प्रति सहिष्णुता रखी जाये।

(४) दूसरे सम्प्रदायों के प्रति घृणा व तिरस्कार की भावना न फैलाई जाये।

(५) कोई व्यक्ति यदि सम्प्रदाय परिवर्तन करे तो उसके साथ अवांछनीय व्यवहार न किया जाये।

जब तक जैन लोग अपने आपको एकता के सूत्र में नहीं पिरोयेंगे तब तक वे दूसरों पर प्रभाव नहीं डाल सकेंगे। इसलिए सर्वप्रथम धर्म समन्वय की दिशा में जैन एकता का होना अनिवार्य है।

एक-दूसरे के प्रति प्रेमपूर्वक सहयोग देने की धार्मिक भावना में अभिवृद्धि होनी चाहिए। जिससे धर्म-समाज में मैत्री-भाव बढ़े, विषमता दूर हो, राग-द्वेष की भावना नष्ट हो। सब जैन धर्मावलंबी अरिहन्त भगवान् को अपना आराध्य मानते हैं और वीतराग प्रभु की उपासना करते हैं। ऐसे वीतराग प्रभु के अनुयायियों में परस्पर रागद्वेष की वृद्धि अवांछनीय है। सभी जैन समाजों में भावात्मक एकता होनी चाहिए।

—मुनि श्री जसकरणजी 'सुजान'

एक आचार : एक विचार

'श्री अमरभारती' दिसम्बर अंक में श्री कलाकुमारजी द्वारा लिखित स्वकथ्य 'नदिया एक घाट बहुतेरे' मनन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। 'भगवान् महावीर की २५ वीं निर्वाण शताब्दी का व्यापक, सर्जनात्मक एवं स्थायी रूप लाने के लिए देश की एवं देश के बाहर की समस्त संस्थाओं एवं समितियों की एक निश्चित रूप-रेखा बनाकर एक साथ समन्वित रूप में बढ़ना चाहिए।" यह एक प्रशंसनीय पहल है। इसे ध्यान में रखते हुए मैं एक सुझाव रख रहा हूँ, जिसे कार्य रूप में परिणत करने पर जैन समाज में एक महान् क्रान्ति उत्पन्न हो सकती है जो देश के सभी वर्गों के लिए भी एक उज्ज्वल उदाहरण हो सकता है।

श्रमण संस्कृति जीवन में सदाचार के उच्चतम नियमों को अङ्गीकार करने पर अधिक बल देती है। उसमें सैद्धान्तिक बारीकियों तथा उसमें उत्पन्न उपप्रश्नों को अधिक महत्त्व नहीं माना गया है। यही कारण है कि दिगम्बर तथा श्वेताम्बर दोनों का श्रमण संस्कृति में महत्त्वपूर्ण स्थान है। भगवान् महावीर के युग में साधु नग्न तथा वस्त्र सहित रहते थे, दोनों के आचार में कुछ भेद भी था, पर दोनों का समावेश भगवान् महावीर के शासन में था। दोनों ही आदर

तथा श्रद्धा के पात्र थे। जैन इतिहास बताता है कि कुछ वर्षों के बाद दिगम्बर तथा श्वेताम्बर दो परम्पराओं का आविर्भाव हो गया। यह आश्चर्य का विषय है कि भ० महावीर के अनुयायी २५०० वर्षों में भी परस्पर के मतभेदों का समन्वय न कर सके।

अतः आज जब कि समन्वय का बुलन्द नारा लगाया जा रहा है, और भगवान् महावीर की निर्वाण शताब्दी बड़े धूमधाम से मनाई जाने वाली है, तो अब समय आ गया है कि इन पुराने भेद-भावों को भूल करके समाज व साधु वर्ग इसको नया रूप देवें। वह रूप क्या है, उसकी रूपरेखा क्या होनी चाहिए—**सो, मेरी दृष्टि में मूर्तिपूजक सम्प्रदाय के मुनिराज जो डंडा रखते हैं, स्थानक वासी व तेरापंथी मुनिराज बड़े व छोटे आकार की मुँहपत्ती धारण करते हैं, दिगम्बर मुनिराज जो दिग्वसन रहते हैं—सभी कोई मिलकर एक सर्वमान्य आचार नियमों का सर्जन करें, और उसको समाज सापेक्ष रूप देकर जीवन व्यवहार में क्रियान्वित करें।** इस तरह करने से सब एकसे ही साधु मालूम पड़ेंगे। यह प्रत्यक्ष है कि आज-कल के अधिकांश श्रावकगण साधुओं के इशारे पर ही नाचते हैं, तो समाज में भी समन्वय की भावना जाग्रत हो सकती है। ओसवाल, अग्रवाल, पोरवाल, दशा-बीसा आदि जाति-पाँति के भेदों में जैन बन्धु इस प्रकार अलग-अलग बँटे हैं कि एक-दूसरे के घर का खाना नहीं खाते, बेटी-व्यवहार नहीं करते। यह भी एक प्रकार की अस्पृश्यता है और इसने हमारे जैनत्व को छिपा दिया है। जाति-पाँति के ये भेद यदि अब भी चलते रहे, तो फिर जैनत्व का पता चलना कठिन है। अब समय आ गया है कि इन सब भेदों को समाप्त किया जाए जिससे कि सबके भीतर एक विशुद्ध जैनत्व चमक उठे। इस दिशा में सामूहिक प्रयत्न होने चाहिए। इससे अच्छी भगवान् महावीर की २५ वीं निर्वाण शताब्दी की श्रद्धांजलि और क्या हो सकती है।

—उम्मेदमल मुनोत

साहित्य-समीक्षा

समीक्षार्थ पुस्तकों की दो प्रतियाँ अवश्य भेजें :

पुस्तक : **णीइ धम्म सुत्तीओ (प्राकृत-हिन्दी)**
लेखक : श्री चन्दन मुनि।
भूमिका : उपाध्याय श्री अमरमुनि।
प्रकाशक : वृद्धि चन्द निर्मलकुमार, सूरत।
प्राप्तिस्थान : सजय साहित्य संगम, दास बिल्डिग नं० ५, आगरा २
मूल्य : दो रुपये पचास पैसे।

श्री चन्दन मुनिजी प्राकृत-संस्कृत के सिद्धहस्त लेखक हैं। उनकी कई महत्त्वपूर्ण कृतियाँ इधर में विद्वद्जगत् में स्वागतार्ह बनी हैं।

प्रस्तुत कृति में उनकी स्वतःस्फूर्त मार्मिक सूक्तियाँ हैं, जो प्राकृत भाषा में निबद्ध की गई हैं। कई-कई सूक्तियाँ तो बड़ी ही मार्मिक हैं। प्राकृत भाषा की दृष्टि से पुस्तक का एक विशिष्ट महत्त्व है। उपाध्याय श्री अमरमुनि जी ने अपनी विद्वतापूर्ण भूमिका में कहा है—"श्री चन्दनमुनिजी माँ शारदा के वरद पुत्र हैं, वे निस्पृह वृत्ति के उदारमना सन्त हैं। उनकी यह सुन्दर शिक्षाप्रद और मौलिक विचारों से परिपूर्ण रचना पढ़कर मन मुग्ध हो उठा।"

पुस्तक की छपाई सुन्दर, सज्जा आकर्षक है। पुस्तक उपादेय एवं संग्रहणीय है।

*

पुस्तक : **ज्ञान का अमृत**
लेखक : श्री ज्ञानमुनि।
प्रकाशक : आचार्य आत्माराम जैन मौडल स्कूल,
२९-डी, कमलानगर, दिल्ली।
पृष्ठ ३७५ : मूल्य—तीन रुपए।

श्रद्धेय मुनिराज श्री ज्ञानमुनिजी म० जैन दर्शन के अच्छे ज्ञाता

हैं। आप प्रसिद्ध वक्ता के साथ सिद्धहस्त लेखक भी हैं। 'यथा नाम तथा गुण' की उक्ति आपमें चरितार्थ है।

'ज्ञान का अमृत' पुस्तक में आठ कर्मों की बड़ी ही सुन्दर एवं स्पष्ट विवेचना हुई है। जैन दर्शन पर अद्यावधि प्रकाशित ग्रंथों के बीच इस पुस्तक का अवश्य सम्मान होगा।

पुस्तक की भाषा सरल, सुबोध, शैली सरस एवं प्रवाहमयी है। अतः पुस्तक सामान्य पाठकगणों से लेकर दर्शन सम्बन्धी गम्भीर जानकारी प्राप्त करने वालों तक के लिए समान रूप से उपयोगी सिद्ध होगी।

*

दहेज के दीवानों से (काव्य)

प्रणेता : शर्मनलाल जैन 'सरस'

प्रकाशक : सरस साहित्य कुटीर, सकरार (झाँसी)

'दहेज की प्रथा' आज के मानव की दुर्दान्त भावनाओं का दाहक प्रस्फुटन है। वह समय कितना मर्मस्पर्शी एवं भावनाप्रवण रहा होगा जबकि मानव ने अपनी प्राणों से प्यारी बेटी का ब्याह रचाकर अपने जामाता एवं बेटी के जीवन को प्रथम गृहस्थी के संचालन एवं व्यवस्था हेतु उपहार स्वरूप अपनी वत्सलतामयी भेंट सहेजा होगा। तब उसने शायद स्वप्न में भी न सोचा होगा कि उसकी यह ममतामयी भेंट इतनी जड़ पकड़ लेगी कि एक रोज यह फाँसी की रस्सी बन जाएगी। और, उस रस्सी मे पिता तो लटक कर मरेगा ही, पुत्री भी अनाघ्रात कोमल कुसुम कलिका-सी घुटन की आग में अकाल हो झुलस-मरेगी!

नवयुग के समर्थ काव्यकार श्री 'सरस' जी ने मानव समाज की इसी कलंकमयी प्रथा पर अपनी वाग्वाणी से प्रहार किया है।

सरस जी का स्वर कितना प्रांजल एवं सशक्त है, देखिए :

"बन्द करो दर पर दहेज को, अब लालों की बोलियाँ,
कफन उड़ाकर अब न निकालो, अबलाओं की टोलियाँ।
लालों जैसा उनका भी, अब इस जग में सम्मान हो,
डाकिन जैसे अपशब्दों से, अब न कहीं अपमान हो।"

पुस्तक समाज के लिए एक गौरवपूर्ण कृति है।

— कलाकुमार

समाज दर्शन

राष्ट्रसुरक्षा की दिशा में योगदान :

—सुप्रसिद्ध दानवीर श्री खेल शंकर दुर्लभजी ने अपनी पूजनीया माताश्री की पुण्य स्मृति में "श्री संतोष वा दुर्लभजी मेमोरियल हास्पीटल" की स्थापना लगभग ५० लाख रुपए की लागत से की है। इस नवनिर्मित हास्पीटल का निरीक्षण माननीया प्रधानमन्त्री, श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने किया और श्री खेलूभाई की इस मानव-सेवा परायणता की भूरि-भूरि प्रशंसा की। साथ ही इसे राजस्थान की एक महान् आवश्यकता की पूर्ति बताते हुए इसके प्रति अपनी हार्दिक सद्भावना एवं मंगलकामनाएं अर्पित कीं।

खेलूभाई ने वर्तमान युद्ध में घायल जवानों की चिकित्सा के निमित्त इसे राष्ट्र के प्रतिरक्षा सेना को समर्पित कर और भी गौरवपूर्ण बना दिया है। इससे श्री खेलूभाई की न सिर्फ मानव-सेवा-भावना की पुष्टि होती है, बल्कि उदात्त राष्ट्रीय भावना एवं देशभक्ति का भी आदर्श सामने आता है। ●

—पश्चिम पाकिस्तान के नृशंस अत्याचारों से पीड़ित एवं आजादी के लिए संघर्षशील बंगलादेश की जनता के प्रति भारत सरकार ने मानवता से प्रेरित होकर मानवीय संवेदना तथा सहयोग का जो परिचय दिया है वह वस्तुतः भारत की गौरवशाली परम्परा के अनुरूप है। बंगलादेश सरकार को मान्यता प्रदान कर पश्चिम पाकिस्तान की तानाशाही हुकूमत द्वारा भारत पर थोपे गये युद्ध में हमारी सरकार एव प्रधानमन्त्री ने जिस संयम, धैर्य, शौर्य और स्वाभिमान का परिचय देकर देश की जनता भावना को सफल बनाया है उसके लिए समग्र जैन समाज की ओर से भारत जैन महामण्डल अभिनन्दन करता है। मातृभूमि की रक्षा के लिए जैन समाज से

पूर्ण सहयोग और समर्थन का भारत जैन महामण्डल सरकार को विश्वास दिलाता है और समग्र जैन समाज से अपील करता है कि संकट की इस बेला में राष्ट्र एवं सरकार को पूर्ण सहयोग दें।

—शादीलाल जैन, शेरीफ आफ बम्बई,
अध्यक्ष—भारत जैन महामण्डल

—श्री मरुधर केसरी उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, राणावास के समस्त सदस्यों द्वारा निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पारित किए गए :

विद्यालय की कार्यकारिणी सभा, राष्ट्र की सुरक्षा के लिए अदम्य साहस तथा अद्वितीय शौर्य से वीरगति पाने वाले सैनिकों के पाँच पुत्रों को इस विद्यालय में आगामी सूत्र से निःशुल्क शिक्षा प्रदान करेगी एवं उनके भोजन, आच्छादन आदि का सभी व्यय भी कार्यकारिणी ही वहन करेगी।

शाला के सभी अध्यापक राष्ट्रीय सुरक्षा कोश में दो दिन का वेतन देंगे, तथा शाला से सम्बद्ध छात्रावास के २५० छात्र एक मास तक प्रति सप्ताह एक समय के भोजन व्यय की बचत राशि राष्ट्रीय सुरक्षा कोष में प्रदान करेंग। ●

—६ दिसम्बर। **जैन नगर मेरठ**। स्थानीय जैन नगर के समस्त निवासियों की एक मीटिंग में यह प्रस्ताव पारित करके पाकिस्तान के बर्बरतापूर्ण आक्रमण के विरुद्ध माननीया प्रधानमन्त्री के सशक्त रूप से उठाये गये कदमों में दृढ़ता लाने के लिए अपनी ओर से हर प्रकार की सहायता देने का निर्णय किया गया। ●

—२० दिसम्बर। **जालंधर सिटी**। भारत-पाक युद्ध में घायल जवानों की सुश्रूषा हेतु श्री जैन नवयुवक मण्डल जालंधर के उत्साही नवयुवकों ने रक्तदान देने हेतु अपने नाम भेजे हैं, साथ ही बोर्डर सेक्यूरिटी स्टाफ में बाँटने के लिए धनराशि एकत्रित की है। ●

—स्थानकवासी श्वे. जैन संघ, आगरा—के उत्साही सदस्यों ने भारत-पाक युद्ध में निरत एव घायल जवानों के लिए कम्बल आदि वस्त्र एवं धनराशि भेजी है। श्रद्धेय कविश्रीजी के प्रवचनों से प्रभावित आगरा संघ पहले भी बंगला-विस्थापितों के लिए उल्लेखनीय

योगदान देता आया है, और देशभक्ति में अपनी अटूट लगन एवं निष्ठा व्यक्त करता रहा है। ●

अहिंसा स्तूप भवन का शिलान्यास :

कटक। स्थानीय स्थानकवासी जैन संघ के सद्प्रयत्नों से भगवान् महावीर की २५वें निर्वाण शताब्दी के उपलक्ष में १२ दिसम्बर को अहिंसास्तूप भवन का शिलान्यास सम्पन्न हुआ।

इस पावन कार्य के प्रेरणास्रोत महान् संत पंडितरत्न प्रवक्ता श्री मनोहरमुनि जी 'कुमुद' एवं उनके परम सहयोगी मधुर गायक, श्री विजय मुनिजी रहे हैं। ●

"विश्वदर्शन की रूपरेखा" ग्रंथविमोचन :

जैन दर्शन एव साहित्य के स्वनामधन्य सिद्धहस्त लेखक वाणी-विशारद सुविज्ञ पं० विजयमुनिजी शास्त्री, साहित्यरत्न द्वारा प्रणीत 'विश्वदर्शन की रूपरेखा—द्वितीय खंड (चार्वाक, जैन, बौद्ध) का ग्रंथ विमोचन गत १६ दिसम्बर को धुलिया के सुविख्यात कार्यकर्ता श्रीमान् माणकचंदजी बाफना के कर कमलों द्वारा सादर सम्पन्न हुआ। समारोह में नगर के गण्यमान्य व्यक्ति उपस्थित थे। ●

सन्मति कन्या उच्च विद्यालय की स्थापना :

कालांवाली। २८ नवम्बर। जैन भूषण पं० श्री विमल मुनिजी म० प्रसिद्ध वक्ता श्री दर्शन मुनिजी म० आदि परम त्यागी संतों की सद्प्रेरणा से कालांवाली की विद्या प्रेमी जनता ने २८ नवम्बर को 'सन्मति उच्च कन्या विद्यालय' की स्थापना की है। ●

दिव्यरत्न ज्योति ग्रन्थ विमोचन :

शाजापुर। जिन शासन प्रभाविका महासती स्वर्गीया श्री रत्नकुँवरजी म० श्री की स्मृति में निर्मित तथा जैनधर्म दिवाकर पंडितरत्न आचार्य श्री आनन्दऋषिजी महाराज को समर्पित 'दिव्य रत्न ज्योति ग्रन्थ' का विमोचन श्रमणसंघ' के प्रवर्तक मुनि श्री हीरालालजी म० कर कमलों द्वारा बड़े भव्य रूप में सम्पन्न हुआ।

समारोह के मुख्य अतिथि थे अ० भा० श्वे० स्था० कॉन्फ्रेंस के उपाध्यक्ष तथा मध्य प्रदेश स्था० जैन श्रावक संघ के अध्यक्ष श्री

सौभाग्यमलजी जैन, ऐडवोकेट तथा कार्यक्रम की अध्यक्षता सुप्रसिद्ध उद्योगपति श्री चन्दनमलजी लुंकड़ ने की। ●

शांति सन्देश पत्रिका का उद्‌घाटन :

शाजापुर। स्थानीय श्री महावीर जैन नवयुवक मण्डल द्वारा प्रकाशित पत्रिका "शांति संदेश" का उद्‌घाटन मधुर व्याख्यान दातृ महासती श्री प्रीतिसुधाजी म० के कर कमलो द्वारा सम्पन्न हुआ। ●

श्री मोहनमलजी चौरड़िया का सार्वजनिक अभिनन्दन :

श्रीमान् दानवीर समाजभूषण सेठ श्री मोहनमलजी चौरड़िया का उनके अ० भा० श्वे० स्थानकवासी जैन कॉंफ्रेंस के अध्यक्ष चुने जाने के उपलक्ष में, मद्रास में एक विशाल सभा के बीच सार्वजनिक अभिनन्दन किया गया। सेठ श्री मोहनमलजी चौरड़िया वस्तुतः अधुना युग के एक महान् व्यक्ति हैं। देश की धर्म और संस्कृति के विकास में आपका योगदान सदा गौरव के साथ याद किया जाएगा। मद्रास शहर के अन्तर्गत—अगरचन्द मानमल जैन कालेज तथा एस. एस. जैन एजुकेशनल सोसाइटी के अन्तर्गत जैनबोर्डिंग हाऊस, हाई-स्कूल्स, प्राइमरी स्कूल्स तथा जैन मेडिकल रीलिफ सोसाइटी द्वारा चलाई जाने वाली लगभग १२-१३ संस्थाओं, मेटरनिटी होम, राजस्थान श्वे० स्था० जैन एशोसियेसन आदि आपकी प्रेरणा एवं गौरवमय सहयोग के ज्वलंत उदाहरण हैं। इसी प्रकार से इस शहर के बाहर भी अनेकशः सार्वजनिक संस्थाओं को जो आपका सक्रिय सहयोग एवं कुशल संचालन मिलता है, यह समाज के लिए एक शाश्वत गौरव की बात है।

मद्रास संघ ने जो आपका सार्वजनिक अभिनन्दन किया है, तथा थैली भेंट करने का प्रस्ताव पारित किया है, यह संघ की गुणग्राही सांस्कृतिक भावना का परिचायक है।

वीरायतन : एक आदर्श योजना

वीरायतन योजना भगवान् महावीर के विचारों एवं संदेशों के अधिकाधिक प्रचार-प्रसार एवं कार्यान्वियन में सफल हो, यह मेरी हार्दिक कामना है।

—**हजारीलाल जैन, 'काका बुंदेलखंडी'**, सकरार (झाँसी)

●

वीरायतन की रूपरेखा पढ़ी। बड़ी सुन्दर लगी। यह योजना अवश्य सफल होगी। पूज्य उपाध्याय मुनिश्रीजी को ऐसी योजना प्रस्तुत करने के उपलक्ष में मेरी ओर से साधुवाद निवेदन करें।

—**प्रतापसिंह बैद**, महावीर औटोपार्ट्स, सिन्नीगुड़ी. (प०बं०)

वीरायतन के स्नेही-सहयोगी :

जैसा कि आपने उपरिवर्णित सुधी विचारकों के विचार देखे हैं, इसी प्रकार से अनेकों धर्मप्रेमियों ने 'वीरायतन योजना' की सफलता हेतु अपने अंतरतम से सहयोग देने की दिशा में धनराशि प्रदान करने का वचन दिया है। पिछले अंकों में आपने उन विशिष्ट दानदाताओं के नाम पढ़ ही चुके हैं। अब यहाँ प्रस्तुत है उसकी अगली कड़ी।

५०१) श्रीमान् भगवानदासजी जैन मैसर्स, दौलतराम छोगामल. अबोहर
३११) ,, देशराजजी जैन, मैसर्स, देशराज मुखदेव, अबोहर
२७८) ,, हेमराज कमल किशोर, बरनाला (पंजाब)
२५१) ,, लाला बाबूराम स्वरूपचन्द जैन, मंडी गोविन्दगढ़ (पंजाब)
२५१) ,, यशपाल जैन, मालेर कोटला (पंजाब)
२५१) ,, नौराताराम रामलाल जैन, नाभा (पंजाब)
२५१) ,, मेहरचन्द ओमप्रकाश गोयल, बरनाला (पंजाब)
२५०) ,, जैन सभा, बरनाला (पंजाब)
२५०) ,, शहजादराय शिखरचन्द जैन, बड़ौत
२०१) ,, नरेशकुमार छाजेर, अबोहर
१०१) ,, धर्मचन्द नरेशकुमार, अबोहर
१०१) ,, मुलखराज जैन, लोहटिया, मालेरकोटला (पंजाब)
१००) ,, चिम्मनलालजी मुनीम, आगरा
१००) श्रीमती निर्मला कोचर c/o मोतीलाल ज्वैलर्स, दिल्ली
५१) श्रीमान पालारामजी सब्जीवाला, बरनाला (पंजाब)
२१) ,, जगन्नाथ प्रसाद ओमप्रकाशजी, मालेरकोटला (पंजाब)
११) ,, राकेश कुमार जैन, बिलासपुर (म०प्र०)
७) श्रीमती संतोषजैन, कोरबा (म०प्र०)

प्रगति और भी जारी है। और भी नाम हमारे पास आये है, जिन्हें हम क्रमशः अगले अंकों में प्रकाशित करेंगे।....

—**संयोजक, वीरायतन**, आगरा-२